नाम महिमा

नारायण

स्वामीश्री अखण्डानन्द सरस्वतीजी

आनन्द जयन्ती के शुभावसर पर इस वर्षका यह उपहार

नाम महिमा

प्रवक्ता

अनन्तश्री स्वामी अखण्डानन्द सरस्वतीजी महाराज

संकलनकर्त्री

सुश्री साध्वी कंचन

प्रकाशक :

सत्साहित्य प्रकाशन ट्रस्ट

मुम्बई-400 006

प्रकाशक व पुस्तक प्राप्ति स्थान :

सत्साहित्य प्रकाशन ट्रस्ट

'विपुल' 28/16 वी. जी. खेरमार्ग
मालावार हिल
मुम्बई - 400 006
फोन : (022) 23682055
मो.: 09619858361

स्वामीश्री अखण्डानन्द पुस्तकालय
आनन्द कुटीर, मोतीझील
वृन्दावन - 281 121
फोन : (0565) 2913043, 2540487
मो. : 09837219460

●

प्रथम संस्करण : 1100
आनन्द जयन्ती
1 अगस्त 2008

द्वितीय संस्करण : 1100
गुरुपूर्णिमा, जुलाई 2015

© सर्वाधिकार सुरक्षित

●

मूल्य : रु. 25/-

●

मुद्रक :
आनन्दकानन प्रेस
डी. 14/65, टेढ़ीनीम
वाराणसी - 221001
फोन : (0542) 2392337

अनुक्रमणिका

प्रवचन	पृष्ठ
1	3
2	15
3	33
4	45

*

स्वामीश्री अखण्डानन्दजी सरस्वती

नाम महिमा

प्रवचन : 1

नामके बिना हमारे लक्ष्यका निश्चय ही नहीं है। जिस लक्ष्यको हम प्राप्त करना चाहते हैं, उसका एक नाम तो होना चाहिये। क्या आप अपने लक्ष्यके बारे में जानते हैं और उसका नाम आपको नहीं मालूम है ? तो कुछ-न-कुछ उसके लिए अ,ब,स संकेत बनाना पड़ेगा।

'लक्षणप्रमाणाभ्यां वस्तुसिद्धिः'

जिस लक्ष्यको आप प्राप्त करना चाहते हैं, उसका कोई लक्षण बनाना पड़ेगा और उसी लक्षण से युक्त उसका नाम बनाना पड़ेगा। यदि आप ईश्वरको मानते हैं तो आपके ध्यान में ईश्वरका एक नाम होना भी आवश्यक है।

'नाम' शब्दका अर्थ होता है, **'नमयति नामयति वा भगवन्तम्'**। आपको हम ग्रन्थोंका नाम बता सकते हैं जिनमें यह वर्णन है कि **'अ'** पञ्चकोण अकार कैसे लिखना चाहिये और ककार कैसे लिखना चाहिये और रेफ कैसे लिखना चाहिये। जो रामके भक्त हैं, उनको सुनानेके लिए यह बात सुना रहा हूँ-हमारे शरीर में जितने मोड़ हैं, उनसे **'रेफ'** अक्षर बनता है। जैसे हमारा हाथ कोहनी पर से घूमता है, तो यह रेफ को बनाता है और दोनों अंशोंको जोड़नेवाला बीच में बिन्दु होता है। रेखा-बिन्दुओं से रेखा बनती हैं। इसलिये जितने भी मन्त्र होते हैं वे बिन्दुयुक्त ही होते हैं। जैसे अनुस्वारका बिन्दु होता है-जैसे **'श्रीकृष्णः शरणं'** में **'ण'** के ऊपर बिन्दु होता है; **'ॐ'** बोलते हैं तो अर्धमात्राके ऊपर बिन्दु होता है।

तो नारायण, नाम अर्थात् **'नमयति नामयति वा भगवन्तम्'**-यह भगवान्को झुका देता है माने भगवान्को कोमल बनाकर हमारे हृदय में ले आता है अथवा **'नमयति भक्तं'**-भक्तके अहंकारको छुड़ाकर भगवान् से मिला देता है। इसलिए, प्रणाम में जो **'णाम'** है वही **'प्र'** उपसर्ग से रहित होकर नाम में जुड़ा हुआ है।

नामके माहात्म्यकी बात तो बहुत ही विलक्षण है। श्रीमद्भागवत में तो लिखा है कि जैसे कोई बच्चेको नाम लेकर पुकारे **'मोहन'** और बच्चा दौड़कर आ जाये,

'आहूत इव मे शीघ्रं दर्शनं याति चेतसि' (भाग. 1.6.34)

वैसे कृष्ण, कृष्ण, कृष्ण कहकर पुकारो और हाथ में बांसुरी लिये, कमर में करधनी बांधे, हाथ में कंगन और माथे पर गोरोचनका तिलक, गले में वनमाला, और वे दौड़ते हुए तुम्हारे पास आ जायें कृष्ण ! यह नाम कैसे लेना ? जैसे प्यासा व्यक्ति पानीको पुकारता है-पानी, पानी, पानी या जैसे तृप्त व्यक्ति आ-हा आनन्द , आ-हा आनन्द बोलता है, माने संयोगकी भावना हो तो रस से तृप्त होकर भगवान्‌का नाम बोलो और यदि वियोगकी भावना हो तो प्यासेकी तरह भगवान्‌का नाम बोलो। भगवान्‌का नाम एक धुंधली-सी शक्ल पहले आपके सामने लाकर खड़ा करेगा। पहले मालूम होगा कि अंधकार में ही कोई चल-फिर रहा है। अगर आपके हृदय में अमावस्याकी रात्रिके समान अंधकार है तो उसमें धीरे-धीरे श्रीकृष्णचन्द्रकी किरणोंका प्रकाश होता है। यही भगवान्‌को कृष्णचन्द्र, रामचन्द्र कहनेका भी अभिप्राय होता है। चन्द्रमा मनका देवता है और यह मन में प्यारको जगाने वाला होता है।

अब थोड़ा नाम-जपके बारे में सुनाते हैं।

पहली बात, जहाँ आप नाम-जपके लिए बैठें, वह स्थान पवित्र हो और एकांत हो।

दूसरी बात, जिस आसन पर बैठें वह भोजनका आसन न हो, सोनेका आसन न हो, लोगों से गप्प हाँकनेका आसन न हो; केवल भजनके लिये ही आसन हो।

तीसरी बात, बैठें तो मानसिक रूप से पवित्र होकर बैठें और ऐसे आसन से बैठें कि हिलें-डोलें नहीं।

हम आपके सामने पाँव फैलाकर बैठते हैं, लेकिन जब हम भागवतका सप्ताह करनेके लिए बैठते हैं तो चार-चार घंटे तक हमको हिलनेकी जरूरत नहीं पड़ती। भूल जाता है कि हमारा पाँव कहाँ है, हमारा शरीर कहाँ है ! तो जब हम एक ओर अपने मनको लगा देते हैं ! तो शरीरकी बार-बार याद नहीं आनी चाहिये। योगदर्शन में सिद्धासन, वीरासन आदिका वर्णन नहीं है, पद्मासनका भी वर्णन नहीं है। वहाँ तो वर्णन है,

'स्थिरसुखमासनम्'

जिसमें हम खूब आराम से बैठ सकें, उसका नाम **'आसन'** होता है। माने दर्द न हो, घुटनें न दुखने लगें। दोनों घुटने अगर धरतीको छूते हों तो सबसे बढ़िया होता है। लेकिन इसके लिये अभ्यास करना पड़ता है।

आपको यह बात सुनाता हूँ कि यदि आप दस-पन्द्रह मिनट से ज्यादा न बैठ सकते हों तो पहले ही दिन घंटे-डेढ़ घंटे भर बैठनेका अभ्यास नहीं करना। हर महीने में पाँच मिनट बढ़ाना। छः महीने में आप पन्द्रह मिनटको पैंतालीस मिनट कर सकेंगे और उसके बाद तीन महीना और करने पर घंटे भरका आपका आसन सिद्ध हो जायेगा। लेकिन पहले दिन तो ज्यादा बैठें और बाद में घटाने लग जायें तो,

'चलितवृत्तस्तु वृत्तशेषं न रक्षति'।

जो एक बार आगे बढ़कर पीछे हटने लगता है, कम करने लगता है, उसका फिर कम हो जाता है; बल्कि कम नहीं हो जाता, छूट जाता है। इसलिये जितना प्रारम्भ किया जाय, उससे एक-दो मिनट बढ़ता जाये-यह तो ठीक है। परन्तु उससे कम कर देने पर तो बिलकुल कट जाता है। इसलिये कम नहीं करना चाहिये।

आसनके सम्बन्ध में एक और बात आपको यह सुनानी है कि जहाँ तक हो सके-अगर रोगी अथवा वृद्ध न हो तो पीठकी रीढ़ सीधी रखनी चाहिये।

समं कायशिरोग्रीवं धारयन्नचलं स्थिरः।
संप्रेक्ष्य नासिकाग्रं स्वं दिशश्चानवलोकयन्॥

(गीता, 6.13)

स्थानका प्रभाव हमने पड़ते देखा है। एक स्थान पर एक दिन मैं बैठा और दूसरे दिन हमारे मित्र बैठे और दोनोंको एक ही प्रकारका विचार उदय हुआ। स्थान में भी विचारके संस्कार होते हैं, आसन में भी विचारके संस्कार होते हैं, बैठनेके ढंग में भी विचारके संस्कार होते हैं।

तो नारायण, हमको ईश्वर प्राप्त करना है और उस ईश्वरका अमुक नाम है और वह अपने मन से माना हो तो चाहे बदल सकते हैं। एक दिन एक नाम अच्छा लगा तो वह लेने लगे और दूसरे दिन दूसरा नाम अच्छा लगा तो उसको लेने लगे! ऐसा बिलकुल ठीक नहीं।

अब आपको एक चमत्कारकी बात सुनाता हूँ। वह चमत्कार चाहे तो आप अभी देख सकते हैं और चाहे तो घर जाकर देख सकते हैं। और, चाहे तो दस दिन बाद देख सकते हैं। यदि आपका शरीर भजन में बैठने पर हिलता हो या झुकता हो तो इसके निवारणका एक उपाय बताता हूँ! वह उपाय यह है कि आप भजनके पहले अपने हृदय में शेष भगवान्‌का ध्यान करें-उनकी गोद में

विष्णु और सिर पर धरती है और फण बिलकुल फुफकारे हुए। योग-भाष्य में यह बात कही गयी है और हमारा अनुभव है कि जब तक आप विष्णुको गोद में लेकर और सिर पर धरती लेकर शेष भगवान्‌का ध्यान कर बैठते हैं, तब तक आपका आसन स्थिर रहेगा। गौर वर्णके सर्प हैं ये और इनके फण सहस्र हैं, हिलते नहीं हैं। यदि वे हिल जायें तो धरती हिल जाये। यदि वे हिल जायें तो भगवान्‌की नींद टूट जाये। तो स्वामीकी सेवा में कोई अन्तर न पड़े और अपने कर्त्तव्यके पालन में भी कोई अन्तर न पड़े, इसके लिए शेष भगवान् बिलकुल स्थिर रहते हैं। आप शेष भगवान् पर संयम कीजिये, उनका ध्यान कीजिये। जितनी देर तक शेषका ध्यान करेंगे, उतनी देर तक आपका शरीर हिल नहीं सकता। यह बात योगके चमत्कारों में बतायी गयी है।

'प्रयत्नशैथिल्यानन्तसमापत्तिभ्याम्' ।

(योगसूत्र 2.47)

अच्छा जी, भजनके बाद हमको यह काम करना है, यह काम करना है, तो जो बहुधन्धी लोग होते हैं, उनकी भजन में स्थिरता न होने में यह मुख्य कारण है। वे सोचते हैं कि पन्द्रह मिनट भगवान्‌का भजन कर लें तो उसके बाद दूकान पर जाकर हमको अमुक काम करना है, कारखाने में अमुक काम करना है। अब वह जो कर्म करनेका संकल्प है, वह शरीरको चंचल कर देता है, रक्तको चंचल कर देता है। तो एक बार प्रयत्नशैथिल्य करना होगा।

'प्रयत्नशैथिल्य' क्या है ? हे प्रभु ! हम तुम्हारे ध्यान में बैठते हैं। अब दुनिया से हमारा कोई लेना-देना नहीं है। सब बही-खाता, सब हिसाब-किताब हमारा पूरा हो गया। हम तुम्हारी सेवा में बैठते हैं। अगर आप कहोगे कि हमारे अन्दर मिल जाओ, तो मिल जायेंगे। अगर आप कहोगे कि वैकुण्ठ चलो, तो चले जायेंगे। आप कहोगे कि कभी दुनिया में मत जाओ, तो नहीं जायेंगे। हम सचमुच संसारका मोह और चिन्तन छोड़कर तुम्हारी शरण में आये हैं। अब हमारा कोई कर्त्तव्य संसार में बाकी नहीं है। और, यह करके आप शरीरको स्थिर कीजिये और भगवान्‌का ध्यान कीजिये, देखिये ध्यान होता है कि नहीं होता है ! आपका मन बिलकुल एकाग्र हो जायेगा। इसको योगकी भाषा में **'प्रयत्नशैथिल्य'** बोलते हैं। यदि युक्ति नहीं करोगे भाई, **'बिना युक्तिमनिन्दिताम्'**-बिना प्रशस्तयुक्तिके अनुष्ठानमें मन कभी एकाग्र नहीं हो सकता। उसके लिए प्रशस्तयुक्ति क्या है ?

अध्यात्मविद्याधिगमः साधुसङ्गतिरेव च ।
वासनासम्परित्यागः प्राणस्पन्दनिरोधनम् ।
एतास्ता युक्तयः पुष्टाः सन्ति चित्तजयेखिल ॥

मन पर विजय प्राप्त करनेके लिये चार युक्ति ध्यान में रखनी चाहिये-

१- **अध्यात्मविद्या** । माने पोथी में लिखी हुई नहीं । अध्यात्मविद्या माने आँखका देखना और हमारे मनका संकल्प । हाथका उठना और हमारे मनकी स्थिति । पाँवका चलना और हमारा मन । और, मन और हमारी आत्मा । ये परस्पर किस प्रकार सम्बद्ध होकर काम करते हैं । जैसे मोटर चलाने वाले ड्राइवरको मोटरकी एक-एक मशीनरीका ज्ञान होवे, तब तो वह बिगड़ने पर उसको चालू कर लेगा और मशीनरीका ज्ञान न होवे तो बिगड़ने पर वह चालू नहीं कर सकता । इसी प्रकार यह हमारे शरीरका यंत्र किस प्रकार से चालू होता है, यह हमको आँख से देखनेकी, कान से सुननेकी, नाक से सूँघनेकी जो प्रक्रिया है, मनके साथ जो इनका सम्बन्ध है, आत्माके साथ जो इनका सम्बन्ध है, वह ज्ञात होना चाहिये । तब हम मनको एकाग्र कर सकेंगे ।

२-'साधुसङ्गतिरेव च'-जिन्होंने अपना मन एक लक्ष्यमें लगाया हो, उनकी संगति होनी चाहिये ।

३-'वासनासम्परित्यागः'-जो भिन्न-भिन्न प्रकारकी वासनायें हैं, उनका त्याग होना चाहिये ।

४-'प्राणस्पन्दनिरोधनम्'-प्राणको रोकनेका सामर्थ्य होना चाहिए ।

ये चार युक्ति मनको निरुद्ध करनेके लिए प्रधान हैं ।

अब आपको बाहरकी युक्ति सुनाता हूँ ।

नारायण, आप जब आसन बाँधकर बैठें तो दोनों अँगूठोंको एक में मिला दें-चाहे सामनेकी ओर से; चाहे बगलकी ओर से और ये ढीले न पड़ने पावें । इससे संसारकी जो चिंता है, वह कम हो जायेगी । अच्छा, इस बातको भी छोड़ो ! यह तो बहुत स्थूल है । आप मुँह बन्द करके केवल यह ख्याल रखो कि हमारी जीभ ऊपर न लगे, नीचे न लगे, दाँतको न छूये, मुखाकाशमें स्थिर हो जाये । देखो आपका मन बिलकुल चंचल नहीं होगा । आप बैठें, परन्तु आपकी आँखकी पुतली दायें-बायें, ऊपर-नीचे हिलने न पावे ! जहाँ-की-तहाँ अपनी पुतलीको स्थिर कर लो । आपका मन एकाग्र हो जायेगा । अपने मनको आप हृदयाकाश में ले जाकर, जहाँ कोई शोक नहीं, निराकार हृदयाकाश है, वहाँ स्थिर कर दो । आप अपने मनको ले जाकर

नाभिके पास जो मणिपूरक आकाश है, जहाँ केवल प्राणस्पन्द होता है, वहाँ स्थापित कर दो। आपका मन स्थिर हो जायेगा। मूलाधार से लेकर सहस्रारपर्यन्त किसी भी कोष्ठक में अगर आप अपने मनको उठाकर रख दें तो वहाँ बैठ जायेगा। यह मन को एकाग्र करनेकी पद्धति है। जो लोग इस मार्ग में नहीं चलते हैं उनके लिये यह थोड़ा कठिन है, उनकी समझ में नहीं आवेगा। लेकिन जो इस मार्ग में चलते हैं उनके लिये यह बहुत सहज और बहुत स्वाभाविक है। जैसे आप ॐकारका उच्चारण करें। तो ॐकारके उच्चारण में जो लोग अधिकार विषयक विवाद रखते हैं, उनकी बात को हम छोड़ देते हैं। अच्छा, हम ॐकारकी बात नहीं करते, उससे मिलते-जुलते एक अक्षरकी बात करते हैं। वह एक अक्षर क्या है ? तेरहवाँ स्वर। तेरहवाँ स्वर कौन-सा है ? **'ओ'** है और **'ओ'** पर आप एक बिंदी लगाओ। यह अकार, उकार, मकार वाला प्रणव है-यह ख्याल छोड़ दो। जैसे किसी का ओंकारप्रसाद नाम है, ओंकारदत्त नाम है तो उसका उच्चारण सबलोग करते हैं। भंगी भी पुकारेगा तो ओंकारप्रसाद ही बोलेगा। मुसलमान भी पुकारेगा तो ओंकारप्रसाद बोलेगा। ऐसे आप जो तेरहवाँ स्वर है, उसके ऊपर बिंदी रख दो और उसको लम्बा करके बोलो-**'ओ....म्'**। एक सेकेण्ड, दो सेकेण्ड, तीन सेकेण्ड। धीरे-धीरे एक मिनट हो जायेगा। यह **'ओ'** से लेकर **'म'** तक का जो ख्याल होगा उसमें आपके मनमें कोई विषय नहीं आवेगा। अच्छा, **'ओम्'** को छोड़ो ! राम बोलो-**'राSSSSम'**। यह जो **'रा'** और **'म'** के बीच में अवकाश है, दोनों के बीच में जो अन्तर है, इतनी देर तक आपका मन एकाग्र हो जायेगा। ऐसे ही **'कृष्ण'** शब्द का भी उच्चारण होता है।

तो मनको एकाग्र करनेके लिए तो बड़ी-बड़ी युक्ति हैं। लेकिन ये सब मार्ग समाधि लगानेके साथ सम्बन्ध रखते हैं। यदि निराकार ईश्वर में आपको स्थित होना हो तो एकाग्रताकी ये सब-की-सब पद्धति युक्ति-युक्त होती हैं। लेकिन प्रेमका मार्ग तो बड़ा विलक्षण है। प्रीति की जो रीति है, उसमें अभानरूप एकाग्रताकी आवश्यकता नहीं पड़ती। योगकी समाधि लगाने में अभानरूप स्थितिकी जरूरत पड़ती है। **'अभान'** अर्थात् जिसमें संसार मालूम ही न पड़े। शांत-वृत्तिका नाम **'योग'** होता है और अपने प्यारेके चारों ओर मनका जो मँडराना है, इसका नाम **'प्रेम'** होता है। यदि कभी वह हमको समाधिस्थ देखकर खुश होता हो तो हम समाधि लगाकर भी उसके सामने बैठ सकते हैं। परन्तु, एक बड़ी विचित्र बात है, आजकल के लोग तो इस बातको जानते भी

नहीं हैं कि लीला में शांतरस को स्वीकार ही नहीं किया गया है। किन्हीं-किन्हीं के मत में एक शान्त नामका भी नवम-रस है, परन्तु वह अभिनेय नहीं है। यदि रंगमंच पर जाकर कोई ध्यान लगाकर बैठ जाये तो लोगोंको हँसी आवेगी कि देखो कैसा ढोंग कर रहा है। रसाभास हो जायेगा। क्योंकि उसकी समाधि पर दर्शकका,समाजका विश्वास ही नहीं होगा कि रंगमंच पर बैठकर यह नट समाधिस्थ हो गया है। तो जहाँ नटकी समाधि पर विश्वास नहीं होगा वहाँ रसाभासके सिवाय और क्या होगा ? यह हास्य-रसका प्रसंग बन सकता है।

तो नारायण, जहाँ प्रेम होता है वहाँ अपने प्रियतमको न देखकर रोते हैं। उनको देखकर हँसते हैं। उनके गले लगते हैं। उनके साथ खाते हैं। उनके साथ पीते हैं। श्रीमद्भागवतमें एक स्थान पर आया है कि एक बार यशोदा मैय्या का मन श्रीकृष्णको देखकर ईश्वर में लग गया।

'यन्मायया इत्थं कुमतिः स मे गतिः' ।

(भागवत 10.8.42)

यशोदा मैय्या ने हाथ जोड़ लिया कि अरे, यह तो ईश्वर है। उसी समय-

इत्थं विदिततत्त्वायां गोपिकायां स ईश्वरः ।
वैष्णवीं व्यतनोन्मायां पुत्रस्नेहमयीं विभुः ॥

(भागवत 10.8.43)

भगवान् ने सोचा कि अगर मैय्या समाधि लगाकर बैठ जायेगी तो हमको माखन-मिश्री कौन देगा ? हमको दूध कौन पिलावेगा ? हमको गोद में लेकर प्यार कौन करेगा ? तो भगवान्को यह बात बिलकुल पसन्द नहीं आयी कि मैय्या हाथ जोड़े, मैय्या समाधि लगावे, मैय्या एकाग्र होकर बैठे और मैं इसकी तरफ टुकुर-टुकुर देखता रहूँ। आपलोग आध्यात्मिकताको एकांगी नहीं समझें। यह आध्यात्मिकता पूर्ण होती है और अभान-दशा में-जिसमें संसारका बिलकुल भान न हो, उसमें अज्ञानको निवृत्त करनेका सामर्थ्य भी नहीं है और उसमें प्रीतिका अनुभाव सेवा भी प्रकट नहीं होती है। तो भगवान् श्रीकृष्ण ने क्या किया?

'वैष्णवीं व्यतनोन्मायां' ।

भगवान् ने यशोदा मैय्या पर अपनी माया फैलायी। क्या उन्होंने कपट किया ? नहीं, कपट नहीं किया। वैष्णवी-माया फैलायी कि जिससे यशोदा मैय्या हमारी अधिक-से-अधिक सेवा कर सके। तो यशोदा मैय्याके मन में आया कि अरे-अरे, हमारे लाला ने इतनी देर से दूध नहीं पीया है, सो

श्रीकृष्णको मैय्या ने दोनों हाथ से पकड़कर गोद में उठा लिया और स्तन उनके मुँह में डाल दिया, दूध पिलाने लगीं। यह दूध पीनेवाला क्या ईश्वर से कम है ? न-न, यह ईश्वरेश्वर है-

त्रय्या चोपनिषद्भिश्च सांख्ययोगैश्च सात्वतैः ।
उपगीयमानमाहात्म्यं हरिं सामन्यतात्मजम् ॥

(भागवत 10.8.45)

चारों वेद, उपनिषद्, सांख्य, योग जिसके माहात्म्यका पूरा-पूरा वर्णन करने में समर्थ नहीं हैं, उसी भगवान्‌को यशोदा मैय्या अपने पुत्रस्नेहका विषय बनाकर दूध पिलाती हैं, गोद में ले लेती हैं। ब्रह्मका साधारणीकरण हो गया। माने जो ब्रह्म अत्यन्त दुर्लभ था, निराकार था, निर्विकार था, निर्गुण था, निर्धर्मक था, निर्विशेष था-उस ब्रह्मको यशोदा मैय्या ने अपने प्रेम से नन्हा-सा शिशु बना कर अपनी गोद में ले लिया और प्यार करने लगीं।

तो यह जो नामका जप है, यह केवल चित्तकी एकाग्रताके उद्देश्य से है-यह बात तो केवल योग-सिद्धान्तके अनुसार है। और, यह अंतःकरणको शुद्ध करनेके लिये है-यह बात केवल ज्ञान-सिद्धान्तके अनुसार है। यदि समाधि तुम्हारा लक्ष्य होवे, तब तो नामका जप तुम्हारे मनको एकाग्र करके समाधि में पहुँचावेगा और यदि ज्ञान तुम्हारा लक्ष्य होवे तो नामका जप तुम्हारे चित्तको शुद्ध करके महावाक्यके द्वारा आहित हृदय में ब्रह्माकार-वृत्ति कर देगा। और, यदि तुम्हें ब्रह्माकार-वृत्ति नहीं चाहिये और समाधि भी नहीं चाहिये, ज्ञान और कर्मका आवरण यदि तुम्हारे चित्त में नहीं है तो यह नाम-जप-जिसके नामका जप होता है, उसके प्रति प्रीति उत्पन्न कर देता है।

अब एक बात आपलोगोंको और सुनाते हैं कि जिन लोगोंका यह ख्याल है कि नाम-जप करने में जब एकाग्रता हो तब नामका फल होता है, वे लोग नामकी महिमाको कम जानते हैं। जैसे यह तो वैद्यकी वह दवा हुई जो अनुपानके बिना काम ही नहीं करती हो। बहुत बढ़िया दवा दी वैद्यजी ने ! उन्होंने कहा था कि अदरक के रस में लेना। अब अदरक का रस नहीं मिला। तो यह फायदा करेगी कि नहीं करेगी ? नहीं करेगी। नारायण, वह दवा क्या है? फिर तो दवाके बदले अदरक का रस ले लो ! तो नाम एकाग्रताके बिना लाभ नहीं करता-यह बात बिलकुल गलत है। नाम में वस्तु-शक्ति है। जैसे अनजान में भी अमृत पीने पर आदमी अमर हो जाये और अनजान में भी जहर पीने पर मर जाये, ऐसे अनजानमें भी भगवन्नाम लेने पर, बिना

एकाग्रताके चञ्चलता से भी भगवन्नाम लेने पर वह अपना काम करता है। और, यहाँ तक कि भागवतका तो कहना है कि,

अज्ञानादथवा ज्ञानादुत्तमश्लोकनाम यत् ।
सङ्कीर्तितमघं पुंसो दहेदेधो यथानलः ॥

(भागवत ६/२/१८)

चाहे ज्ञान से जपो, चाहे अज्ञान से जपो, वह होना चाहिये भगवान्का नाम ! जैसे अनजान में भी छूने पर आग जला देती है, इसी प्रकार अनजान में भी छूने पर यह नाम पाप-राशिको भस्म कर देता है।

नाम पापको मिटाने में जितना समर्थ है, उतना पाप कोई पापी कर ही नहीं सकता। इसका रहस्य मैं आपको सुनाता हूँ! इसका रहस्य यह है कि ऐसा नहीं है कि हम श्रद्धा करें तब नाम लाभ करे। असल में यदि हमारी श्रद्धाकी अपेक्षा से नामका लाभ होता है तो हम लाभके हेतु बन गये, नाम लाभका हेतु कहाँ बना ? माने हमारी श्रद्धा से नाम लाभ करता है, तो लाभके कारण हम हुए कि नाम हुआ ? लाभके कारण हम हो गये। और, यदि बिना श्रद्धाके भी नाम लाभ करेगा तो लाभके कारण ईश्वर हुए, हम नहीं हुए।

नारायण, यदि योगका सिद्धान्त होवे, यदि ज्ञानका सिद्धान्त होवे तो हम यह मान सकते हैं कि हम ही सम्पूर्ण सद्गुणों और दुर्गुणोंके जनक हैं। लेकिन जहाँ भक्ति सिद्धान्त है, वहाँ सामर्थ्य ईश्वरका माना जाता है। हम केवल नामोच्चारण करते हैं। सो भी ईश्वरकी कृपा से, ईश्वरके अनुग्रह से। वही यहाँ बैठकर हमारे मुँह से नामकी प्रेरणा देता है तब नामका उच्चारण होता है। इसलिये जब नामके उच्चारण में भी ईश्वर हेतु है, तो नामके फल-दान में ईश्वर हेतु होगा-ही-होगा। अतः नामका फल स्वातन्त्र्येण ईश्वर देता है, उसमें हमारी श्रद्धाका कोई उपयोग नहीं है। श्रद्धा इस बातकी सूचक है कि जल्दी-से-जल्दी ईश्वरकी कृपा होगी। परन्तु, नामका फल ईश्वर भी नहीं, नामका फल तो नाम ही देता है-नाम पर विश्वास करनेवाले लोग ऐसा मानते हैं। जैसे बूँद-बूँद अमृत गिर रहा हो, तो अमृतकी प्रत्येक बूँद हमारे अमृतत्व और स्वादको, रसको बढ़ाती है; इसी प्रकार यह जो हमारी जिह्वामें, हमारे कण्ठ में भगवान्का नाम आता है, यह नाम नहीं है। कृष्ण, कृष्ण, कृष्ण-यह अमृतकी बूँद है और न इसमें एकाग्रताकी जरूरत है और न इसमें श्रद्धाकी जरूरत है। यह ईश्वरकी शक्ति, ईश्वरके अनुग्रह से ही हमारा कल्याण करता है।

एक दूसरी बात इसके सम्बन्ध में सुनाता हूँ।

यह नाम में ज्ञान है कि नाम में समाधि है कि नाम में आनन्द है ? सत्ताकी प्रधानता से समाधि है, चित्‌की प्रधानता से ज्ञान है और आनन्दकी प्रधानता से प्रीति है। तो नाम में क्या है ? जरा एक बार आप इस पर विचार करो ! यदि कोई एकाग्रताके लिये नाम लेगा, तो नाम एकाग्रता तो देगा। समाधि दे देगा नाम। क्यों ? एक ही वस्तु में बारम्बार वृत्ति जानेके कारण विक्षेप मिट जायेगा और जिसका आप नाम लेंगे उसमें समाधि लग जायेगी। परन्तु, समाधि देकर नाम चला जायेगा। नाम आपके पास रहेगा नहीं। नाम समाधि दे देगा, लेकिन समाधि-काल में नाम नहीं रहेगा। बच्चेको गुड़ चाहिये। माँ ने गुड- दिया कि लो बेटा तुम गुड़ खाओ और वह खुद दूसरे कामके लिये चली गयी। यह नाम भी माता ही है। यदि आप इससे कोई खिलौना चाहते हैं तो वह देकर हट जायेगा अर्थात् आपकी समाधि लग जायेगी। यदि आप नाम से अंत:करणकी शुद्धि चाहते हैं और ज्ञान चाहते हैं तो नाम अपने अर्थको प्रकाशित करेगा। नाम में प्रकाशकत्व है। प्रकाशकत्व कैसे है ? **'रूमाल लाओ'**-यह कहने पर आपके मन में **'रूमाल'** नामकी वस्तु प्रकाशित होती है। नाम अर्थका प्रकाशक होता है, इसलिये नाम ज्ञानका जनक होता है। परन्तु, यदि आपको केवल अर्थ ही चाहिये, नाम नहीं चाहिये, तो नाम अपना अर्थ देकर लुप्त हो जायेगा। सदंश और चिदंश देकर नामका लोप हो जाता है।

अब आप प्रेमकी बात देखो !

नाम जब प्रेमांशका दान करता है तो प्रेमांश में न तो ज्ञानके समान अद्वैत है और न तो समाधिके समान अभान है। उसमें दूसरी कोई चीज भासती नहीं। प्रेम में तो अपना प्रियतम भासता है। सो वहाँ नामका व्यवहार बना रहता है। इसलिये, भक्तिकी पराकाष्ठा होने पर भी भक्तके मुख से नामका उच्चारण होता रहेगा-कृष्ण ! कृष्ण !! कृष्ण !!! वह नामका उच्चारण जब प्रेमदान करेगा तब तो नाम छूटेगा नहीं और जब ज्ञानदान करेगा अथवा समाधिदान करेगा तब वह अपने अधिकारीको छोड़कर बिलकुल अलग हो जायेगा ! तुमको जो दिया सो दिया, तुमने पाया। मैं तो प्रेममें रहता हूँ। प्रेम और नाम बिलकुल एक वस्तु हैं। इसलिये जिन लोगोंको नामका आनंद आ जाता है, इसके सम्बन्ध में आपको दो श्लोक सुनाता हूँ-

एक तो श्रद्धा आदिकी अपेक्षा नाम में नहीं है इसके लिये,

श्रद्धया अश्रद्धया वा मात्रं तारयेत कृष्णनाम ।
मधुरमधुरमेतन्मङ्गलं मङ्गलानाम् ।

यह नाम क्या है ? मधुरातिमधुर है, मङ्गलोंका मङ्गल है ।

'सकल निगमवल्लीसत्फलम्'।

सम्पूर्ण वेदरुपी लताका सत्फल है ।

'चित्स्वरुपम्'

स्वयं चैतन्य है ।

'सकृदपि परिगीतं श्रद्धया हेलया वा ।'

एक बार भी उसका गान होवे-चाहे श्रद्धा से अथवा अवहेलनासे-यह नाम मनुष्यको, जीवको जगत् से उठाकर ईश्वर में रखने में समर्थ है ।

श्रीरुपगोस्वामीजी महाराज इसके आनन्दका वर्णन करते हैं । वे कहते हैं कि जब नाम हमारी जिह्वा पर आया-यह नामका रूप धारण करके चैतन्य ईश्वर ही हमारे जीवन में प्रवेश करता है-

तुण्डे ताण्डविनी रतिं वितनुते तुण्डावलीलब्धये,
कर्णक्रोडकडम्बिनी घटयते कर्णार्बुदेभ्यः स्पृहाम् ।
चेतःप्राङ्गणसङ्गिनी विजयते सर्वेन्द्रियाणां कृतिं,
नो जाने जनिता कियद्भिरमृतैः कृष्णेति वर्णद्वयी ॥

कृष्ण ! कृष्ण !! कृष्ण !!

श्रीरुपगोस्वामीजी महाराज कहते हैं कि जब हमारी जिह्वा पर आकर यह **'कृष्ण'** नामवाली सुधा नृत्य करने लगती है, तब हमारे मन में यह आकांक्षा होती है कि ईश्वर ने हमको एक ही जिह्वा क्यों दी ? हमको इन्होंने सहस्र जिह्वा क्यों नहीं बना दिया ? हमको लाख जिह्वा क्यों नहीं दी ? और, जब यह नामकी अमृतधारा हमारे कान में पड़ती है **'कर्णक्रोडकडम्बिनी घटयते कर्णार्बुदेभ्यः स्पृहाम्'** तो हमारे मन में आता है कि हमारे अरबों कान हो जायें और सबसे सुनें । यह मधुर-मधुर नामका रसगुल्ला मुँह में डाल दिया । अब मन हुआ कि थूक दो । अरे, थूक नहीं सकते ! छेनेको भले थूक दो ! लेकिन उसमें जो चासनी है, उसको नहीं थूक सकते । नारायण, जब नाम मुँह में आता है तो गले में उतरता है और जब गले में उतरता है तब हृदय में जाता है और जब हृदय में जाता है तब वह ऐसा प्रकट होता है कि हृदय में उसकी ध्वनि सुनकर बाहर कुछ सुननेकी इच्छा नहीं रहती । भीतर उसको देखकर बाहर देखनेकी इच्छा नहीं रहती । भीतर उसको छूकर बाहर

छूनेकी इच्छा नहीं रहती। सम्पूर्ण इन्द्रियोंकी कृति पर नाम विजय प्राप्त कर लेता है।

'नो जाने जनिता कियद्भिरमृतैः कृष्णेति वर्णद्वयी ।'

पता नहीं कितने अमृतों से यह कृष्ण, कृष्ण, कृष्ण नाम भरा हुआ है!

आनन्दके समुद्र में जो दो तरङ्ग उठती हैं, उसका नाम है राधा-कृष्ण। आनन्दके समुद्र में जो ध्वनि है उस ध्वनिका नाम है राधा-कृष्ण। यहाँ फल देकर नाम छूटता नहीं है। जहाँ फल देकर नाम छूट जाये, वहाँ तो नामातिरिक्त, ईश्वरातिरिक्त कोई फल होगा। जहाँ नाम ईश्वर रूप फलका दान करता है, वहाँ स्वयं नाम ईश्वर होकर विराजता है।

'समुझत सरिस नाम अरु नामी ।'

जहाँ नाम और नामीको सदृश समझते हैं,

'प्रीति परसपर प्रभु अनुगामी ।'

नारायण, जो नाम है, वही भगवान् हैं और जो भगवान् हैं, वही नाम है। दोनों में परस्पर प्रीति है। असल में नाम और नामी दोनों में एक ही ईश्वर भरा हुआ है।

*

प्रवचन : 2

कोई सज्जन पूछते हैं कि षडक्षर राम-मंत्र-क्या है ? तो वैसे शास्त्रकी रीति से मंत्रका सार्वजनिकरूप से उच्चारण नहीं किया जाता है। क्योंकि मंत्रका मंत्रत्व ही यह है कि वह गुप्त ही रहे। गुरु-शिष्यकी परंपरा से वह अधिकारी पुरुषको प्राप्त होवे। परन्तु, आजकल तो सब मंत्र पुस्तकों में छपते हैं।, अखबारों में छपते हैं। इसलिये हम प्रकारान्तर से उस मंत्रको बताते हैं।

मंत्रके प्रारम्भ में प्रणव है और उसका द्वितीय अक्षर अग्निबीज है और चतुर्थ्यन्त **'राम'** पद है और उसके बाद **'नमः'** है। तो प्रणवपूर्वक अग्निबीज सहकृत चतुर्थ्यन्त **'राम'** पद और अंत में **'नमः'**- इसको षडक्षर राम-मंत्र बोलते हैं।

मंत्र-जप में और नाम-जप में थोड–ा अन्तर होता है। मंत्र-जप पवित्र दशा में किया जाता है। चाहे आप स्नान करके अपनेको पवित्र अनुभव करें, चाहे नामोच्चारण से अपनेको पवित्र अनुभव करें, चाहे मानसिक रूप से गंगास्नान, यमुनास्नान कर लें ! चाहे भगवान्के चरणारविन्द से निःसृत भावमयी गंगामृत धारा में स्नान कर लें ! चाहे शंकर भगवान्के शिरोभाग पर जो गंगाधारा गिरती है, उसका ध्यान कर लें ! पवित्रताका भाव आना आवश्यक है। चाहे कुण्डलिनीशक्तिके जागरण से अपने में पवित्रताका अनुभव कर लें। शाक्तलोगों में पद्धति है कि कुण्डलिनीका जागरण और प्रायः सब उपासकों में भूत-शुद्धिकी प्रक्रिया चलती है। यह उपासनाशास्त्रकी बातको सब लोग नहीं समझेंगे। जो उसके जिज्ञासु होंगे, जिनके मन में यह इच्छा होगी कि हम करें, वे व्यक्तिगत रूप से समझते हैं तब तो यह बात उनकी समझमें आती है। पञ्चभूतोंकी धारणा होती है। भूत-शुद्धि होती है। पाप-पुरुषका दाह होता है। पुण्य-पुरुषका जागरण होता है। यह भावनाकी सृष्टि बड़ी विलक्षण है।

नारायण, जो लोग केवल यान्त्रिक या ऐन्द्रियक प्रकाश में वस्तुको देखना चाहते हैं, उनको केवल जड़-तत्त्व ही दिखाई पड़ता है। जड़-तत्त्वका यदि साक्षात्कार करना हो तो ऐन्द्रियक और यान्त्रिक पद्धति से आप वस्तुका अनुसन्धान करो। और, यदि शून्यका साक्षात्कार करना हो तो हम उसकी भी प्रक्रिया बताते हैं। यदि कोई कहे कि महाराज, हम तो जीव, ईश्वर कुछ भी नहीं मानते, जगत् कुछ नहीं मानते। तो हमको कोई आश्चर्य थोड़े ही होता है। ऐसे

तो हमारे पास रोज पाँच-दस आदमी आते ही रहते हैं। तो उनको बौद्धिक-पद्धति से शून्यका साक्षात्कार होता है। और, श्रद्धा-विशिष्ट बुद्धि से ईश्वरका साक्षात्कार होता है। **'शेमुषी भक्तिरूपा'**। श्रद्धा, भक्ति विशिष्ट ज्ञान से सगुणसाकार ईश्वरका दर्शन होता है और शुद्ध तत्त्वज्ञान से माने जहाँ करणों से भी हम ज्ञानको पृथक् कर लेते हैं, विषय से भी ज्ञानका पृथक्करण और इन्द्रियों से भी ज्ञानका पृथक्करण और हृदय से भी ज्ञानका पृथक्करण, व्यष्टि-समष्टि से भी ज्ञानका पृथक्करण-ज्ञानके स्वरूपका शुद्ध-शुद्ध जब आकलन करते हैं तो निर्गुण-निराकार, निर्विशेष ब्रह्मतत्त्वका बोध हो जाता है। इसलिये, साधनकी पद्धति में हम किसी भी स्थितिको असंभव नहीं मानते हैं। यदि कोई चाहे तो पृथिवी से एकता हो जाये। कोई चाहे तो जल से तादात्म्य हो जाये। कोई चाहे तो अग्नि से तादात्म्य हो जाये। वायु से, आकाश से तादात्म्य हो जाये। अहंकार और महत्तत्त्व से तादात्म्य हो जाये। निराकार-सगुण ईश्वर से तादात्म्य हो जाये और चाहे तो किसी से तादात्म्य न होकर अपने शुद्ध स्वरूपको ब्रह्मके रूप में अनुभव करे। इस सबकी प्रक्रिया है, सबकी साधना है। वस्तु निरपेक्ष होती है। परन्तु कोई भी प्रक्रिया निरपेक्ष नहीं होती है। इसलिये, जो लोग प्रक्रियाको लेकर वाद-विवाद करते हैं, वे जिंदगी भर खेत जोतते और बीज बोते रहेंगे और फसल कभी पैदा ही नहीं होगी। एक बार गेहूँ बो दिया, किसी ने कहा कि राम-राम, गेहूँ क्यों बोया ? चना बोते ! तो फिर जोतकर चना बो दिया। तो गेहूँ तो गया। तीसरे ने कहा कि अरे राम-राम, चना क्यों बोया ? गन्ना बोते तो ज्यादा रुपया मिलता ! तो चनेको जोत दिया और गन्ना बो दिया। तो यदि इस तरह से बोते और खेतको जोतते, उलटते जायेंगे तो उसमें फलपर्यन्त आपकी गति कभी नहीं होगी। इसलिये अपने लक्ष्यका निश्चय करके एक साधनाके मार्ग पर चलना चाहिये।

परन्तु, साधनाके मार्ग पर चलें भी तब जब बाहरके विषयों से कुछ विरक्ति होवे ! उनमें कुछ अरुचि होवे ! एक सज्जन हमारे ही पास रहते हैं और उनको वेदान्तका अभ्यास भी है, भक्त भी हैं। वे कहीं गये और सुन आये कि मनको एकाग्र करनेका एक बड़ा सरल तरीका है। उनको किसी ने बताया कि साँस लेने में नाभि हिलती है। तुम राम-कृष्णका ध्यान छोड़ो और **'अहं ब्रह्मास्मि'** तो केवल अभिमान मात्र ही है। अब यह नाभिके पास जो गति होती है, जो हिल रहा है-वह कहाँ हिल रहा है और उसको कौन हिला रहा है, वहाँ जो आकाश है-उसका ध्यान करो। तो यह पेटके भीतरका जो आकाश है, उसको परम सत्य

या परमार्थ मान बैठना भावना नहीं है तो और क्या है ? अरे चाहे भीतर भावना करो, चाहे बाहर भावना करो। घटका चिन्तन करो, चाहे घटके अभावका चिन्तन करो। वृत्ति में जो उसके परमार्थ होनेका विश्वास है, वह बराबर ही है। कलेजेके भीतर परमार्थ रहता है और बाहर संसार रहता है-ऐसा नहीं है। कलेजे में घिरा हुआ भी संसार रहता है। और कलेजेके बाहर भी संसार रहता है। जब तक चित्त में विरक्ति न हो, मुमुक्षा न हो, जिज्ञासा न हो, परमार्थकी प्राप्तिके लिए व्याकुलता न हो, तब तक साधन बेचारा क्या करेगा ? चलना तो हमको पड़ेगा ! अब महीने भर मत्थापच्ची करके हमको उन सज्जनको समझाना पड़ा कि बाबा, सीढ़ी तोड़कर कोई छत पर नहीं पहुँचता है। तुम खण्डन करो तो दोषका खण्डन करो, दुर्गुणका खण्डन करो, दुर्भावका खण्डन करो, वासनाका खण्डन करो। जो हमें आगे बढ़ने में साधन है, उसका खण्डन क्यों करते हो ?

अब थोड़ी नाम-साधनाके बारे में आपको और बात सुनाते हैं।

वैसे तो नाम में अधिकारीकी जरूरत नहीं है। और, कल मैंने सुनाया कि श्रद्धा, भक्ति से नाम जप करें, तब तो कहना ही क्या ! श्रद्धा, भक्तिके बिना भी नाम में वही शक्ति है, जो ईश्वर में शक्ति है। हमलोग ईश्वरको सातवें आसमान में नहीं रखते हैं। देखो, आत्मा तो मिलता है अहं के भीतर और ईश्वर मिलता है सम्पूर्ण सृष्टिके भीतर। आत्मा इस शरीरके भीतर जो **'अहं'** है, उससे उपलक्षित है और ईश्वर, सम्पूर्ण सृष्टिके भीतर जो चेतन है उससे उपलक्षित है और ब्रह्म में **'त्वं'** और **'तत्'** पदका वाच्यार्थ नहीं होता। लक्ष्यार्थ ही होता है। वह सर्वातीत है, स्वयंप्रकाश है, सर्वाधिष्ठान है। उसमें न **'अहं'** चलता न **'तत्'** चलता। लेकिन भगवान् हम उसको कहते हैं जो **'अहं'** भी है **'इदं'** भी है **'तत्'** भी है, **'त्वं'** भी है। भगवान् शब्दका प्रयोग हम इस अर्थ में करते हैं कि भगवान्का निर्गुणरूप ब्रह्म है, भगवान्का ऐश्वर्यशाली रूप ईश्वर है; भोग्य रूप, नियम्य रूप जीव है और भगवान्की लीलाके विस्तारके लिये यह जगत्के रूप में वही प्रकट हुआ है। यद्यपि सब एक ही है, परन्तु जैसे एक ही अनारके फल में छिलका, गूदा, बीजका भेद कर लेते हैं; ऐसे एक ही भगवान् सारी सृष्टिके रूप में प्रकट हैं। हम नास्तिक को भी ईश्वरका रूप मानते हैं और आस्तिक को भी। और, किसी आचार्य, सम्प्रदायके अनुयायीको भी ईश्वर रूप मानते हैं और जो अनुयायी नहीं है, उसको भी और भारत को भी और पाकिस्तान को भी और चीन, अमेरिका को भी भगवद्-रूप, ईश्वर रूप ही मानते हैं। नारायण, यह भगवद्रूपकी जो मान्यता है वह हमारे हृदयको इतना

सुन्दर, इतना स्वच्छ, इतना निष्पक्ष, इतना सम और ऐसी सच्चिदानन्दकी अनुभूति से पूर्ण बनाती है, जिसकी कोई हद नहीं।

जैसे सर्वरूप भगवान् हैं, ऐसे सारे नाम भगवान्के हैं-यह सिद्धान्त है। हमारे उत्पलाचार्य ने, कल्लकाचार्य ने कहा कि,

भोक्तैव भोग्यभावेन सदा सर्वत्र संस्थितः ।
तेन शब्दार्थचिन्तासु न स शब्दो न यः शिवः ॥

सर्वका भोक्ता जो भगवान् है, वही भोग्य है। जैसे समझो राधा भोग्य हैं और कृष्ण भोक्ता हैं और कृष्ण भोग्य हैं और राधा भोक्ता हैं। तो जो भोक्ता है वही भोग्य है और जो भोग्य है वही भोक्ता है। जो शब्द है वही अर्थ है और जो अर्थ है वही शब्द है। तो जैसे भगवान् सर्वात्मक हैं, वैसे भगवान्का नाम भी सर्वात्मक है। जिन लोगों ने ईश्वरको माना ही नहीं, वे अधूरे तत्त्वका निरूपण करते हैं, कभी कहते हैं कि अभावात्मक ईश्वर है। कभी कहते हैं कि भावात्मक ईश्वर है। कभी कहते हैं कि सातवें आसमान में ईश्वर है। कभी कहते हैं कि दिल में ईश्वर है। कभी कहते हैं कि बाहर ईश्वर है। फिर उसमें लोगोंको यह बताते हैं कि अंतिम सत्य यही है।

नारायण, सत्य यदि अंतिम होता है तो सत्य आदि भी होता है। यदि सत्य आदि न हो तो सत्य अंतिम नहीं हो सकता और जो आदि और अंत में होता है, वही मध्य में होता है।

'आदावन्ते च यन्नास्ति वर्तमानेऽपि तत्तथा' ।

जो आदि और मध्य में नहीं होता, वह मध्य में भी नहीं होता। श्रीमद्भागवत में इस सिद्धान्तका बड़ा सुन्दर प्रतिपादन है-

'न यत् पुरस्तादुत यन्न पश्चा-
न्मध्ये च तन्न व्यपदेशमात्रम् '।

(भागवत, 11.28.21)

न यदिदमग्र आस न भविष्यदतो निधना-
दनुमितमन्तरा त्वयि विभाति मृषैकरसे।

(भागवत 10.87.37)

तो हमारे कहनेका अभिप्राय यह है कि आप भगवान्का नाम लें। आपको सिर्फ इतना मालूम हो कि यह भगवान्का नाम है। नामका स्वरूप क्या है-इसके साथ इस बातका कोई सम्बन्ध नहीं है। नाम कुछ भी हो, परन्तु आपको ज्ञात हो कि यह भगवान्का नाम है। हमलोग देखो, **'ह्रीं' 'क्लीं'-**

इस ढंग से भी भगवान्‌का नाम लेते हैं। गोपालसहस्रनाम में भगवान्‌का नाम **'गोली'** है। शालग्रामकी गोली आपने देखी ही होगी। भगवान्‌का नाम **'गुली'** है। गुल्ली-डंडा जैसे खेलते हैं, वैसे गुल्लीकी तरह हैं। नारायण, भगवान् गुलिकाके समान भी हैं और गोलीके समान भी हैं। ब्रह्माण्ड-गोल भी उसीका है। ब्रह्माण्ड गोल जिसका है, उसको **'गोली'** बोलते हैं। तो भगवान्‌के ऐसे-ऐसे नाम भी होते हैं। हमारे एक मित्र हैं। वे पच्चीस वर्ष से केवल नामोंका ही अनुसन्धान करते हैं कि शास्त्रों में भगवान्‌के कितने नाम हैं।

एक गाँवका गँवार किसी महात्माके पास गया। महात्मा ने पूछा- 'क्या बात है भाई ?' बोला कि महाराज, हमको तो कोई सीधी-सादी बात बता दो ! हम भगवान्‌का नाम लेंगे। महात्मा ने कहा कि तुम **'अघमोचन, अघमोचन'** नाम लिया करो। **'अघ'** माने पाप और **'मोचन'** माने छुड़ानेवाला। अब वह बेचारा गाँवका गँवार आदमी **'अघमोचन,अघमोचन'** करता हुआ चला तो गाँव में जाते-जाते **'अ'** उसको भूल गया। वह **'घमोचन, घमोचन'** बोले। वह पढ़ा-लिखा तो था नहीं। न डॉक्टर था, न एम.ए. था। वह तो **'घमोचन,घमोचन'** करे और हल जोते। एक दिन हल जोत रहा था और **'घमोचन,घमोचन'** कर रहा था, इतने में वैकुण्ठ में भगवान् भोजन करने के लिए बैठे। उनको हँसी आ गयी। लक्ष्मीजी ने पूछा कि क्यों हँसते हो ? भगवान् बोले कि आज हमारा भगत एक ऐसा नाम ले रहा है कि वैसा नाम तो किसी शास्त्र में है ही नहीं। नया नाम ले रहा है। लक्ष्मीजी बोलीं कि तब तो हम उसको देखेंगे और सुनेंगे कि कौन-सा नाम वह ले रहा है। अब लक्ष्मी-नारायण दोनों खेत में पहुँचे और देखा कि वह भगत हल जोत रहा है और **'घमोचन, घमोचन'** बोल रहा है ? भगवान् स्वयं पास में नहीं गये। पास में एक गड्ढा था, वहीं छिप गये और लक्ष्मीजीको उस भगतके पास भेजा। लक्ष्मीजी पास में जाकर पूछीं कि अरे, तू यह क्या **'घमोचन, घमोचन'** बोल रहा है ? उन्होंने एक बार, दो बार, तीन बार पूछा। परन्तु वह कुछ उत्तर ही न दे। उसने सोचा कि इसको बताने में हमारा नाम छूट जायेगा। चुप रहा। बोले ही नहीं। जब बार-बार लक्ष्मीजी पूछें तो अंत में उसको आया गुस्सा। गाँवका आदमी तो था ही। बोला, 'जा-जा, तेरे खसमका नाम ले रहा हूँ'। अब तो लक्ष्मीजी डरीं कि यह तो हमको पहचान गया। फिर बोलीं कि अरे तू मेरे खसमको जानता है क्या ? कहाँ है हमारा खसम। एक बार, दो बार, तीन बार पूछने पर वह खिसियाकर बोला,' वह गड्ढे में है, जा' ! लक्ष्मीजी

समझीं कि यह तो हमको पहचान गया। नारायण भी वहाँ आ गये और बोले, लक्ष्मीजी, देखी हमारे भगतकी महिमा ! अब आओ इसको दर्शन दें ! यह अघमोचन और घमोचन का भेद भले न समझता हो, लेकिन हम तो यह समझते हैं कि यह हमारा ही नाम ले रहा है। हम इसके ज्ञानको व्यर्थ कर सकते हैं। लेकिन हम अपने ज्ञानको व्यर्थ नहीं कर सकते ! हम समझते हैं कि यह हमारा ही नाम समझकर **'घमोचन'** नाम से हमको ही पुकार रहा है'।

तो सगुण ईश्वरकी जो भक्ति है, वह कर्ताकी प्रधानता से नहीं होती है। वह अनुग्रहकर्ता भगवान्‌की प्रधानता से होती है और वे जब देखते हैं कि टूटे-फूटे कैसे भी मनुष्य, शुद्ध, अशुद्ध कैसे भी प्रेमपूर्वक मेरा नाम लेते हैं तो उनका हृदय उनको मिलनेके लिए द्रवित हो जाता है। यह शुद्ध-अशुद्धका भेद एकदम लौकिक है।

मूर्खो वदति विष्णाय धीरो वदति विष्णवे ।
उभयोस्तु फलं तुल्यं भावग्राही जनार्दनः ॥

एक मूर्ख है, बोलता है **'विष्णाय नमः'** और पंडित है, बोलता है **'विष्णवे नमः'**। उसको **'विष्णु'** शब्दका चतुर्थ्यन्त एकवचन में क्या होता है, वह मालूम है। परन्तु, भगवान्‌तो दोनोंके हृदयकी बात समझते हैं कि इसके दिल में जो फुरफुरा रहा है, वह मेरा स्वरूप है; वह मेरे लिये पुकार रहा है।

मन्त्रतः तन्त्रतश्छिद्रं देशकालार्हवस्तुतः ।
सर्वं करोतु निश्छिद्रं नामसंकीर्तनं तव ॥

'बोलने में मंत्र अशुद्ध हो, करनेकी विधि में गलती हो, देश अशुद्ध हो, काल अनुपयुक्त हो और योग्य पात्र न मिले, लेकिन **'सर्वं करोतु निःछिद्रं नामसंकीर्तनं तव'**-भगवान्‌का नाम संकीर्तन सबको निःछिद्र बना देता है।'

तो नारायण, ईश्वरकी शक्ति, नामकी शक्तिकी प्रधानता से भक्ति होती है। आत्माकी शक्तिकी प्रधानता से भक्ति नहीं होती है। इसलिये जो साधक है, जो नाम लेनेवाला है, स्थान-स्थान पर भक्ति उसकी मदद करती है।

हमारे हरिबाबाजी महाराजकी निष्ठा तो अद्वैतकी है। जब कभी हमलोगोंकी एकान्त में चर्चा होती है-अद्वैत-वेदान्तकी चर्चा करते हैं। गंगा किनारेके विरक्त महात्मा, जो बड़े विद्वान् थे श्री अच्युतमुनिजी महाराज, उनसे उन्होंने प्रस्थान-त्रयीका अध्ययन किया है। एक बार अच्युतमुनिजीके साथ वे वर्धा गये। वहाँ एक दिन कहीं बगीचे में अकेले घूमने गये। बगीचे में कोई

मन्दिर था। जब जाकर मन्दिरके दरवाजे पर प्रविष्ट हुए, एकाएक उनको ऐसा मालूम पड़ा कि मूर्ति में से कोई देवता निकलकर बाहर आ रहा है। देवता तो गौरवर्ण था। उसने बाहर आकर दोनों हाथ से पकड़ कर उनको छाती से लगा लिया। उनकी निष्ठा तो अद्वैतकी थी। उन्होंने पहले तो सकपका कर देखा कि यह क्या हो रहा है ? कोई हमारे मनका भ्रम तो नहीं है ? अब उसके बाद जब यह निश्चय हो गया कि सचमुच यह देवता है और हमको छाती से लगा रहा है; तो भावावेश में मूर्च्छित हो गये और उसी दिन से उन्होंने भगवन्नामका संकीर्तन करना शुरू कर दिया।

नारायण, जो साधारण लोग हैं; ये न शून्य समझें, न अभाव समझें, न निराकार समझें, न निर्गुण समझें। इनके कल्याणके लिये यह आवश्यक है कि इनके जीवन में भगवान्‌का नाम रहे। तबसे पैंतालीस वर्ष हो गये, वे लोगोंको केवल भगवान्‌का नाम सुनाते हैं और भगवान्‌के नामका कीर्तन करते हैं। उनके यहाँ एक नाटक उनके भक्त लोग दिखाते हैं। पंजाबी सेठ दो भाई थे। उनमें से एक भाई तो महात्माओंका बड़ा भारी भक्त था और दूसरा बड़ा विरोधी था। **'मुण्डे मुण्डे मतिर्भिन्नाः'**। मतभेदको भी हम लोग आवश्यक समझते हैं। नहीं तो दोनों पक्षकी युक्तियोंकी अभिव्यक्ति ही न हो। भागवतमें तो ऐसा लिखा है कि जब दो आदमी विवाद करने लगते हैं तो, दोनों के भीतर भगवान् बैठकर दोनोंको युक्तिकी प्रेरणा देते हैं कि दोनों अपनी-अपनी बुद्धि लगावें ! वह बुद्धि दोनों आदमियोंकी नहीं होती। वह बुद्धि भगवान्‌की होती है।

'यच्छक्तयो वदतां वादिनां वै
विवादसंवादभुवो भवन्ति ।

(भागवत 6.4.31)

'विवाद और संवाद-दोनोंके लिये शक्ति और युक्ति भगवान् देते हैं।'

तो एक भाईको तो ऐसी युक्ति दे दी कि वह साधुको देखकर घर से बाहर जाये और दूसरेको ऐसी श्रद्धा, ऐसी शक्ति दी कि वह गाँवमें से बुला-बुलाकर साधुओंको भोजन करावे और उनका आदर, सत्कार करे। उसके मन में यह चिन्ता थी कि हमारा भाई भक्त कैसे हो जाये ! इसका कल्याण कैसे हो ? मरणोत्तर इसको सद्‌गति कैसे प्राप्त हो जाये-इसके लिये वह बड़ा चिन्तित था। देखो, अपने लिये नहीं, अपने भाई के लिये उसे चिन्ता थी। एक दिन कोई बड़ा लम्बा-तगड़ा पंजाबी साधु आया। उसने कहा कि महाराज, आप तो बड़े प्रभावशाली हैं। किसी प्रकार हमारे भाईका कल्याण कर दीजिये।

तो उन्होंने कहा कि अच्छी बात है, उससे हमको मिलने दो ! तो संयोगवश मिल गया। महात्माजी देखकर बोले कि ए सेठ सुन, भगवान्‌का नाम ले। उसने कहा कि हम किसीका नाम-वाम नहीं लेते। हम अपने आपमें मस्त हैं। क्यों हमको झगड़ेमें डालते हो ? महात्मा बोले कि नहीं, लेना पड़ेगा ! उसने हठ किया, मना किया तो पकड़ लिया हाथ और बोले कि लो भगवान्‌का नाम नहीं तो गला घोंटकर मार डालेंगे। उसी समय उसने झुँझलाकर कहा कि मैं नहीं लेता रामका नाम, चाहे तुम मुझे मार डालो ! तो साधु ने कहा कि बस-बस हो गया। तेरे मुख में भगवान्‌का नाम आ गया। अब देख, मेरी एक बात ध्यान में रखना कि इसको किसी कीमत पर बेचना मत। बेटेके लिये नहीं, पैसेके लिये नहीं, स्त्रीके लिये नहीं, राज्यके लिये नहीं, सुखके लिये नहीं। किसी भी कीमत पर इस नामको बेचना मत। उन्होंने उसको यह उपदेश किया और चले गये। जब वह व्यक्ति मरा और मरनेके बाद यमदूत यमपुरी उसे ले आये तो यमराजने कहा कि तेरे जीवनमें कोई पुण्य नहीं है। केवल एक बार तूने झुँझलाकर कहा है कि मैं रामका नाम नहीं लूँगा। तो उसके बदले में तू जो कुछ लेना चाहे ले ले बाबा ! फिर अपने कर्मका फल भोगने नरकमें जा। उसको साधुकी बात याद आ गयी। उसने कहा कि बाबा, हमको नहीं मालूम है कि एक बार राम बोलने में क्या मिलता है ! सो आप जो ठीक समझो, वह हमको दे दो ! यमराज ने अपना बही-खाता देखा, तो वहाँ नामके बदले में क्या मिले-यह बात नहीं लिखी हुई थी। तो बोले कि हमारे स्वामी तो इन्द्र हैं, चलो इन्द्र से पूछें। इन्द्रके पास गये तो उन्होंने कहा कि हमको भी नहीं मालूम है। चलो ब्रह्माजी के पास चलें। वहाँ गये तो ब्रह्माजी ने कहा कि हमको भी नहीं मालूम है। चारों वेद में नामोच्चारणकी कीमतका तो कहीं उल्लेख ही नहीं है। शंकरजी हमेशा नाम लेते रहते हैं, चलो उनके पास चलें। तो शंकरजीके पास वह पापी, यमराज, इन्द्र, ब्रह्मा सब गये। शंकरजी ने कहा कि हम तो नाम लेते हैं। हमने कभी बेचने, खरीदनेका काम किया ही नहीं है। हम तो सहज स्वभावसे, जैसे मनुष्यको कोई आदत पड़ जाये और वह किये बिना न रहा जाये, ऐसे मैं तो नाम लेता हूँ भगवान्‌का। तो मैं भी इसकी कीमत नहीं बता सकता। अब पापी ने सोचा कि यह तो कोई बड़ी कीमती चीज हमारे हाथ लग गयी कि यमराजको मालूम नहीं, इन्द्रको मालूम नहीं, ब्रह्माको मालूम नहीं, शिवको मालूम नहीं और उन लोकों में जाने से उसकी बुद्धि भी सूक्ष्म हो गयी, दोष भी मिट गया। उसने कहा कि हम कहीं जायें-आयेंगे नहीं, यहीं रहेंगे और

भगवान्‌का नाम लेंगे। उनलोगों ने कहा कि नहीं, इसका निर्णय तो करना ही पड़ेगा। आगे-पीछे फिर काम पड़े तो क्या होगा ? तो उसने कहा कि हम थक गये हैं। सो हम ऐसे नहीं जाते। तो एक पालकी लायी गयी और उसमें यमराज, इन्द्र, ब्रह्मा और शंकर-चारों लगे और पापीको बैठाया पालकी पर और लेकर विष्णु भगवान्‌के पास गये। अब विष्णु भगवान् तो भोले-भाले। उन्होंने सोचा कि जब इतने महान् चार देवता इसको पालकी पर बैठाकर ला रहे हैं, तो कोई बहुत बड़ा भक्त होगा। सो अपने आसन से उठे। उसको पालकी से उतारकर अपने हृदय से लगाया और अपने सिंहासन पर ले जाकर बराबर बैठा लिया। अब प्रश्न हुआ कि इसने झुँझलाकर एक बार नामोच्चारण किया है तो इसके बदले इसको क्या दिया जाये ? विष्णु भगवान् ने कहा कि देखो भाई, अब मैं तो इसको मिल गया। यमराज ने पूछा कि इसके बहुत सारे पाप हैं, उनका क्या होगा ? भगवान् बोले कि मेरे मिलनेके बाद तो यह पाप-ताप भोगनेके लिये जा नहीं सकता। क्योंकि हमारे धामका नियम ही यही है कि,

'यद्‌गत्वा न निवर्त्तन्ते तद्धाम परमं मम'
'न स पुनरावर्तते'।

अब इसको यहीं रहने दो ! तुमलोग जाओ।

तो नारायण, यही नामोच्चारणका फल है कि,

जा कर नाम मरत मुख आवा।
अधमहुं मुकुत होइ श्रुति गावा॥
भायँ कुभायँ अनख आलसहूँ।
नाम जपत मंगल दिसि दसहूँ॥ (रामचरितमानस)

असल में हमारे जीवनको, हमारे हृदयको ईश्वरके साथ जोड़नेकी कर्ताके अधीन यदि कोई कड़ी है तो वह नाम है। इसमें कर्मकाण्डके समान घी-बूरेकी जरूरत नहीं पड़ती और न ब्राह्मणोंकी पराधीनता, न मन्त्रकी पराधीनता। ब्राह्मण न मिले, मन्त्रका शुद्ध-उच्चारण न हो, हवनकी सामग्री न हो, श्रद्धा न हो तो सब बेकार जाये ! तो यह यज्ञ-यागादिके समान वस्तुसापेक्ष, विधिसापेक्ष, ब्राह्मणादिसापेक्ष नहीं है। और, ब्रह्मज्ञानके लिये तो बड़ी भारी शुद्ध-बुद्धिकी आवश्यकता पड़ती है। वहाँ तो अधिकारीका प्रश्न होता है। नाम में अधिकारीका प्रश्न बिलकुल नहीं है।

सुगमं भगवन्नाम जिह्वा च वशवर्तिनी।
तथापि नरके घोरे पापच्यन्ते नराधमाः॥

भगवान्‌का नाम बड़ा सुगम है। निष्ठा हो जानी चाहिये कि अब हम नामको नहीं छोड़ेंगे। और, इसमें हम कैसे उच्चारण करें और कैसे न करें-यह भी कोई प्रश्न नहीं है। श्रीचैतन्यमहाप्रभु एक दिन बड़े दु:खी हो रहे थे। उनकी आँख से आँसू गिरें। भक्तों ने जाकर पूछा कि महाराज, आप क्यों रो रहे हैं? यह महात्माओंके हृदयकी एक बात आपको सुनाते हैं। श्रीचैतन्यमहाप्रभु बोले कि हम तो अपने हृदयकी अश्रद्धाके कारण दु:खी हैं; हम दूसरेके लिये दु:खी नहीं हैं। भक्तों ने आश्चर्य से पूछा कि भला आपके चित्त में क्या अश्रद्धा है? वे बोले कि भगवान्‌ने तो सबकुछ किया, परन्तु मैंने कुछ नहीं किया।

नाम्नामकारि बहुधा निजसर्वशक्ति-
स्तत्रार्पिता नियमित: स्मरणे न काल: ।
एतादृशी तव कृपा भगवन् ममापि
दुर्भाग्यमीदृशमिहाजनि नानुराग: ॥

हे प्रभु, आपने अपने नाम तो बहुत बना लिये। कोई राम-राम ले, कोई शिव-शिव ले। कोई कृष्ण-कृष्ण कहे, कोई नारायण-नारायण कहे। यह नामकी जो अनेकता है, विलक्षण है। यदि एक ही नाम रखा जाता तो भगवान् भी एकदेशी होता। भगवान् भी एकांगी होता। भगवान्‌का भी एक ही रूप होता। भगवान्‌का एक नाम नहीं रखा जा सकता। अनेक रूपों में एक रूप भगवान् हैं। अनेक नामों में एक नाम भगवान्‌का है। यदि दुर्गा में, शिव में, गणेश में हम यह विवाद उपस्थित कर देते कि भाई इनमें से एक बताओ, एक ही ईश्वर है! तो वह आकृति विशेषको ही ईश्वर मानना पड़ता। लेकिन आकृति विशेषका निश्चय न करके जो सम्पूर्ण आकृतियों में अनुस्यूत् उपादान-तत्त्व है अभिन्न-निमित्तोपादान कारण-उसको ईश्वर माननेका अर्थ ही यह हुआ कि वह न आकार है और न आकारका अभाव है। आकार से भी विलक्षण है और आकारके अभाव से भी विलक्षण है और सब आकारों में वही भरपूर है। वह ईश्वर, जो सर्व से बिलकुल अलग है, उसका सर्वके साथ क्या सम्बन्ध हो सकता है? यदि हम दर्शन-शास्त्रकी दृष्टि से यह प्रश्न करें कि जो शुद्ध चैतन्य, शुद्धज्ञान, निराकार जो ईश्वर है, उसका आकारोंके साथ क्या सम्बन्ध है? समवाय सम्बन्ध हो सकता है? निराकारका साकारके साथ समवाय सम्बन्ध नहीं हो सकता। अच्छा, तब क्या संयोग सम्बन्ध है? नहीं, निराकारका साकारके साथ संयोग सम्बन्ध भी नहीं हो सकता। अच्छा तो तादात्म्य सम्बन्ध है? एक में ही तादात्म्य सम्बन्ध क्या होगा?

तो कहने का अभिप्राय यह है कि हमारे वेद-शास्त्र, उपनिषद्की दृष्टि से एक अखण्ड, अद्वितीय भगवान् ही हैं और उनके अनेक नाम हैं; उसी एक की प्राप्तिके लिये। उनके अनेक रूप हैं; उसी एक की प्राप्तिके लिये। रूप में एकता करने पर भी पक्षपात होता है। माने दूसरे रूपों से द्वेष होता है। एक रूप ही यदि ईश्वरका निरूपण किया जाये तो उस रूप में राग होगा और बाकी रूपों में द्वेष हो जायेगा। और, यदि भगवान्का भी नाम एक ही हो तो एक नाम से राग होगा और दूसरे नामों से द्वेष हो जायेगा। इसलिये, भगवान् ने **'नाम्नाम- कारि बहुधा'** कृपा करके अपने बहुत सारे नाम और बहुत सारे रूप प्रकट कर दिये। बच्चा चाहिये तो बच्चा भगवान् लो और युवा चाहिये तो युवा भगवान् लो और धर्मात्मा चाहिये तो धर्मात्मा भगवान् लो। ज्ञानी चाहिये तो ज्ञानी भगवान् लो। अवधूत चाहिये तो अवधूत दत्तात्रेय भगवान् लो। कैसा भगवान् तुमको चाहिये ? स्त्री रूप चाहिये तो महाकाली हैं। भगवान् ने अपने अनेक रूप प्रकट कर दिये और अनेक नाम प्रकट कर दिये। और,

'निजसर्वशक्तिस्तत्रार्पिता'

भगवान्के एक-एक नाम में और एक-एक रूप में भगवान् ने अपनी सारी शक्ति डाल दी। उसमें कोई भी अपूर्ण नहीं है। क्योंकि, सब पूर्णताकी ही अभिव्यक्ति है। ऐसी स्थिति में श्रीचैतन्यमहाप्रभु कहते हैं कि नाम आपके अनेक और सब में आपकी पूरी-पूरी शक्ति और,-**नियमितः स्मरणे न कालः'**-सवेरे उठकर स्मरण करो-यह भी नियम नहीं है। सोते-सोते स्मरण करो, जागते-जागते स्मरण करो, चलते-चलते स्मरण करो। यहाँ तक कि,

भायँ कुभायँ अनख आलसहूँ।
नाम जपत मङ्गल दिसि दसहूँ॥

जैसे किसीको **'छिः-छिः'** बोलते हैं, ऐसे किसीको बोलें **'राम-राम'**। कोई बुरा काम करे और मुँह से निकले राम-राम, तो वह भी कल्याणकारक होता है। किसीको डाँटना हो तो जोर से भगवान्का नाम लेकर डाँट दिया, **'श्रीकृष्ण गोविन्द हरे मुरारे, हे नाथ नारायण वासुदेव'**। इतनेमें भी भगवान् प्रसन्न हो जाते हैं।

शिव-पुराण में तो कथा आती है कि एक डाकू अपने साथियों से बोला करता था-**'आहर, प्रहर'**। माने लूट लो, मार डालो। जब मरने लगा तब बेहोशी में उसके मुँह से यही निकले-**'आहर, प्रहर'** और उसी बीच में शंकर भगवान्के गण वहाँ पहुँच गये कि यह तो **'हर, हर'** बोल रहा है।

एक संस्कृतके पण्डित थे। वे बेहोशी में **चरामः, हरामः, स्मरामः**- इस तरहके परस्मैपदी क्रियापद बोल रहे थे। जब मरने लगे तो भगवान्‌के दूत आ गये कि इसने **'रामः, रामः'** किया है। तो **'नियमितः स्मरणे न कालः'**। पापी हो, पुण्यात्मा हो, ब्राह्मण हो, चाण्डाल हो-श्रीमद्भागवत में तो ऐसे-ऐसे प्रसङ्ग हैं,

'अहो बत श्वपचोऽतो गरीयान्
यज्जिह्वाग्रे वर्तते नाम तुभ्यम्' ।

(भागवत 3.33.7)

'जिसके जिह्वाग्र पर भगवान्‌का नाम है वह चाण्डाल भी ब्राह्मणसे श्रेष्ठ है।'

प्रह्लादकी स्तुतिमें यह प्रसंग आया है,

विप्राद् द्विषड्गुणयुतादरविन्दनाभ-
पादारविन्दविमुखाच्छ्वपचं वरिष्ठम् ।
मन्ये तदर्पितमनोवचनेहितार्थ-
प्राणं पुनाति स कुलं न तु भूरिमानः ॥

(भागवत 7.9.10)

व्रत, तपस्या आदि बारह गुणोंसे युक्त ब्राह्मण है, परन्तु यदि वह भगवान्‌से विमुख है तो उस ब्राह्मणकी अपेक्षा वह चाण्डाल श्रेष्ठ है, जिसने अपना तन-मन ईश्वरके प्रति अर्पण कर दिया।

तो **' नियमितः स्मरणे न कालः'**-सोकर बोलो, जागकर बोलो, पवित्र होकर बोलो, अपवित्र होकर बोलो; न समयकी, न स्थानकी, न वस्तुकी, न ज्ञानकी, न अधिकारीकी-वहाँ तो कुछ अपेक्षा ही नहीं है। परन्तु, श्रीचैतन्य महाप्रभु रो रहे थे कि हे प्रभु, आपने तो हमारे ऊपर ऐसी कृपा की, इतना सुगम साधन दिया; परन्तु **'दुर्भाग्यमीदृशमिहाजनि नानुरागः'**- हमारा दुर्भाग्य ऐसा है कि आपके नामके साथ हमारा प्रेम नहीं हुआ।

यह जो बुद्धिप्रधान लोग होते हैं, उनका षड्यंत्रमें ज्यादा विश्वास होता है; सरलता में नहीं। यह बुद्धिमान् लोगोंका लक्षण ही है कि कुछ थोड़ा दाव-पेंच, कुछ थोड़ी मुद्रा उनको बतावें, कुछ थोड़ा न्यास बतावें, षट्चक्रका षड्यंत्र बतावें। यह सब खेल हमलोगों ने बहुत देखे हैं, बहुत खेले हैं भाई। आप जानते हैं कि वेदान्त में ऐसी प्रक्रिया है कि वहाँ तत्-पदवाच्यार्थ मायोपाधिक सगुण ईश्वरका भी निषेध करना पड़ता है और अंतःकरणोपाधिक अपने अहं-पदके वाच्यार्थका भी निषेध करना पड़ता है और सम्पूर्ण भावाभाव रूप

प्रपञ्चके उदय-विलयके अनुकूल जो शक्ति है, उस शक्ति से अवच्छिन्न ब्रह्ममें इस प्रपञ्चको विवर्त रूप से देखना पड़ता है। यह सब लीला, यह सब खेल मालूम होने पर भी हम आपको यह बात सुनाते हैं कि यदि आपका जीवन दुःखी है, यदि आपका जीवन शोकग्रस्त है, यदि आपके जीवनमें कोई संघर्ष है, कोई युद्ध है, कोई वैमनस्य है, उलझन है तो यह नामकी जो कड़ी है यह आपको ईश्वरके साथ जोड़ देगी। ईश्वरके साथ सम्बन्ध जोड़नेके लिये न आँख काफी है। आँख से ईश्वरके साथ सम्बन्ध नहीं जुड़ेगा। नाक से भी नहीं जुड़ेगा। जीभ से भी नहीं जुड़ेगा। हाथ से भी नहीं जुड़ेगा। पाँव से चल-चलकर आप थक जायें, परन्तु ईश्वरके साथ सम्बन्ध नहीं जुड़ेगा। क्योंकि, ईश्वर एक ऐसा पदार्थ है; जिसको हम इन्द्रियों से ग्रहण नहीं कर पाते हैं। तो उसके लिये नामकी जरूरत पड़ती है, शब्दकी जरूरत पड़ती है। जो लोग नास्तिक हैं उनको नास्तिक्यका साक्षात्कार भी असल में गुरु-उपदेश से होता है। गुरुओंके निर्देशानुसार होता है, उनके बताने पर होता है। असल में बताया हुआ होने से वह भी एक कल्पित पदार्थ ही होता है।

कौन ऐसा माईका लाल है, जो कह दे कि हमारी वैज्ञानिक खोज पूरी हो गयी। हमने संसारका ओर-छोर, पूर्व-पश्चिम, उत्तर-दक्षिण, ऊपर-नीचे सब ढूँढ लिया। हमने कालका आदि-अन्त देख लिया। हमने द्रव्यका कार्य-कारण देख लिया। और, हमको कहीं ईश्वर नहीं मिला। है कोई ऐसा बोलने-वाला, जो कहे कि हमने पदार्थोंका अन्त, शक्तियोंका अन्त, परमाणुओंका अन्त, दिशाओंका अन्त और काल-कलाओंका अन्त देख लिया है। सबसे बड़ा भावुक, सबसे बड़ा श्रद्धालु, सबसे बड़ा अविचारी तो वह नास्तिक है जिसने पूर्ण खोज किये बिना ही यह निर्णय दे दिया कि ईश्वर नहीं है। किसने पूरी खोजकी है ? किसने देखा है कि ईश्वर नहीं है ? तो अपनी अधूरी खोजको पूरी समझनेके कारण भ्रान्तकोटि में वह रह रहा है। क्योंकि, यह खोज कभी पूरी नहीं होती।

तो नारायण, ईश्वरके साथ अपने जीवनको जोड़नेके लिये नामके सिवाय और कोई उपाय नहीं है। श्रीचैतन्यमहाप्रभुके भक्तों में एक सज्जन ऐसे थे कि उनको नाम लेनेकी ऐसी आदत पड़ गयी कि वे शौच जायें तो भी कृष्ण-कृष्ण बोलें, लघुशंका जायें तब भी कृष्ण-कृष्ण बोलें। शुद्धि में, अशुद्धि में सर्वत्र कृष्ण-कृष्ण बोलें। तो उनके भाई-बन्धुओं ने महाप्रभु से जाकर शिकायत की कि ये तो अशुद्ध-दशा में भी भगवान्का नाम बोलते हैं। महाप्रभु

ने उनको बुलाया और कहा कि देखो भाई, शौच, लघुशंकाके समय तो कम-से-कम भगवान्‌का नाम मत लिया करो। तो उन्होंने कहा कि महाराज, जो आज्ञा। आप तो हमारे ईश्वर हैं, आप हमारे गुरु हैं, हमारे सर्वस्व हैं। अब वे जब शौच,लघुशंका करने जायें तो जीभ मुँह से निकालें और हाथ से पकड़ लें। अब दो-चार दिन लोगों ने उनका यह कृत्य भी देखा। पुनः महाप्रभु से जाकर शिकायत की कि ये तो जीभ पकड़कर बैठते हैं। महाप्रभु ने बुलाया कि आखिर बात क्या है ? वे बोले कि बात यह है कि हमारी जीभको नाम लेनेकी आदत पड़ गयी है। हम कहीं भी जायें, वह आदत तो छूटती नहीं है और आपकी आज्ञा है कि उस समय लेना नहीं। सो जीभ पकड़कर बैठता हूँ। महाप्रभु ने कहा कि तुम्हारे लिये नियम नहीं है। महाप्रभु ने उनको छुट्टी दे दी कि हर समय तुम भगवान्‌का नाम ले सकते हो। फिर महाप्रभु ने पूछा कि आखिर तुम चाहते क्या हो ? किस वस्तुकी प्राप्तिके लिये तुम नामोच्चारण करते हो ? उन्होंने कहा कि महाराज, हमको तो मालूम ही नहीं है कि नामोच्चारण से क्या मिलता है। यह तो हमारा सहज स्वभाव हो गया है कि हम भगवान्‌का नाम लेते हैं। योग-चूड़ामणि उपनिषद्‌में यह श्लोक आता है -

अशुचिर्वा शुचिर्वापि प्रणवं यः स्मरेत् सदा ।
लिप्यते न स पापेन पद्मपत्रमिवाम्भसा ॥

चाहे अशुचि हो, चाहे शुचि-शुद्ध-अशुद्ध दोनों दशामें भगवान्‌का नाम लिया जा सकता है।

तो जो लोग भगवान्‌को केवल समाधिकी गुफामें बन्द करके रखते हैं और धरती पर प्रकट नहीं होने देते; ईश्वरका साधारणीकरण नहीं होने देते कि वह सबके लिये सुलभ हो जाये ! स्त्रीके लिये भी सुलभ हो जाये, बालकके लिये भी सुलभ हो जाये, मूर्खके लिये भी सुलभ हो जाये, गँवारके लिये भी सुलभ हो जाये। सबके लिये ईश्वरकी सुलभता कैसे होती है ? भगवन्नाम से यह सुलभता आती है। इसलिये, भगवान्‌के नामके साथ किसी-न-किसी प्रकार सम्बन्ध जोड़ना चाहिये।

थोड़ी-सी बात आपको यह भी सुनावेंगे कि मन्त्र जितने होते हैं, उनमें **'म'** की प्रधानता होती है। नाम में भी **'म'** है, राम में भी **'म'** है, ॐ में भी **'म'** है। यह असल में अ, उ, म्‌-ये तीन विभाग प्रणवका करके विश्वात्मा अकार में और तैजसात्मा उकार में और प्राज्ञात्मा मकार में लीन किया जाता है। माने मकार ईश्वर रूप है। जैसे **'राम'** बोलते हैं, **'श्याम'** बोलते हैं,

'शरणं' बोलते हैं, **'क्लीं'** बोलते हैं, **'ह्रीं'** बोलते हैं-इनमें जो अन्त में मकार का प्रयोग किया जाता है, यह उसी अकार, उकार, मकार में से जो **'म'** है, जो प्रणवकी तृतीय मात्रा है, वही है। एक ही प्रणव में हमारे वाक् से लेकर परब्रह्म पर्यन्त तत्त्वका सन्निवेश होता है। इसमें जो मकार पद है, वह ईश्वरका वाचक होता है।

आपको हम केवल स्मरण दिलाना चाहते हैं कि श्रीमद्भागवतके ग्यारहवें स्कन्ध में इस बातका प्रतिपादन है कि ईश्वर से लेकर वाक्-पर्यन्तका उदय कैसे होता है। उसकी प्रणालीका वर्णन है। जैसे देखो हमारे शरीर में भगवान्का नाम लेते-लेते जड़ता क्यों आ जाती है ? इसका क्या विज्ञान है ? आँसू क्यों गिरने लगते हैं ? शरीर में रोमाञ्च क्यों होता है ? नारायण, यह बुद्धि जब परमेश्वरकी प्राप्तिके लिये अत्यन्त क्षुब्ध होती है, व्याकुल होती है तो वह हमारे प्राणको व्याकुल कर देती है। और, जब हमारे प्राण व्याकुल होते हैं तो व्याकुल हो पृथिवीकी प्रधानता में जब लीन होते हैं, तब जड़ता आती है और जलके साथ जब लीन होते हैं तब अश्रु आते हैं और तेजके साथ जब लीन होते हैं तब वैवर्ण्य और स्वेद आते हैं और आकाशके साथ जब लीन होते हैं तो बिलकुल मूर्च्छा आ जाती है और उसमें चित्तकी प्रधानता से मूर्च्छा, मृत्यु, प्रलय-ये सब अवस्थायें होती हैं। उसी प्रकार हमारे मुख से जो शब्दका उच्चारण होता है, इसके उच्चारण में एक विज्ञान है। एक निःशब्द धातु से शब्दकी उत्पत्ति कैसे होती है, इसका विज्ञान पाणिनि ने बताया है। अंग्रेजी में तो केवल इतना ही मानते हैं कि एक शब्द किसी अर्थका संकेतक होता है। परन्तु हमारा जो शब्द-विज्ञान है, उसका कहना है कि शब्द केवल वाच्यार्थ को देखकर संकेतक के रूप में नहीं होते हैं। जब वे अपनी सूक्ष्मदशा से स्थूलदशा में आते हैं, कारणदशा से कार्य-दशा में आते हैं तो कारण-दशा से कार्य-दशा में आने में भी ध्वनि होती है, शब्द होता है। प्रत्येक वस्तु में जहाँ स्पन्द होता है, वहाँ ध्वनि भी होती है। जहाँ कार्य होता है, वहाँ हिलना होता है। बिना हिले कोई कार्य नहीं हो सकता और जहाँ हिलना होता है, वहाँ ध्वनि होती है। तो प्रत्येक वस्तु जो उत्पन्न होती है; अपने साथ मूलतः एक ध्वनि लेकर आती है। आम फलनेकी ध्वनि पृथक् होती है, अंगूर फलनेकी ध्वनि पृथक् होती है। गुलाबका फूल चिटकनेकी ध्वनि पृथक् होती है। प्रत्येक परिवर्तनमें स्पन्द होता है और जहाँ-जहाँ स्पन्द होता है, वहाँ-वहाँ ध्वनि होती है।

तो हमारे आचार्यों ने इस बातका अनुभव किया कि वह चित्तकी कौन-सी अवस्था होती है जहाँ पहुँचनेके बाद हम नि:स्पन्द होते हैं और उस नि:स्पन्द में अन्ततोगत्वा स्पन्दका उदय, शब्दका उदय कैसे होता है ? यह विषय जरा कठिन है। इसको सर्वसाधारण लोग नहीं समझ सकते। एक साधारण बात बीच में बोल देता हूँ-जैसे हम **'कृष्ण'** बोलते हैं। तो **'क'** कण्ठ में और **'ऋ'**, **'ष्ण'**-ये मूर्धा में। अब कृष्ण-कृष्ण कहनेका अर्थ हुआ कि हमारी चित्तवृत्तिको ऊर्ध्वगति प्राप्त हुई। एक शब्द हमको कण्ठ में से खींचेगा और दूसरा ले जाकर मूर्धा में समाधिस्थ कर देगा। वहाँ **'क'** ने कण्ठस्थ योजना बनाने वाले स्वप्नदर्शी जीवको जाकर पकड़ा और **'ऋ'** ने उसको उठाकर सिर में पहुँचाया और **'ष्ण'** ने जीवात्मा और परमात्माको एकमें जोड़ दिया। यह **'कृष्ण'** नामका विज्ञान हुआ।

अच्छा देखो, राम में क्या है ?

'र' ऊपर है, रेफ है मूर्धा में और **'अ'** कण्ठ में और **'म'** ओष्ठ में है। तो रामचन्द्र क्या करते हैं ? रामचन्द्र अन्त:शक्ति को बाहर जगत्‌में लाकर सबको धर्मात्मा बनाते हैं। और, श्रीकृष्णका नाम पारक है और रामका नाम तारक है। सम्पूर्ण व्यवहारकी शुद्धिके साथ-साथ परमात्माकी प्राप्ति करानेवाला तारक भगवान् रामचन्द्रका नाम है और सम्पूर्ण व्यवहार से मुक्ति देकर भगवत्प्रेमकी प्राप्ति करानेवाला प्रेमप्रधान **'कृष्ण'** नाम है और धर्म-प्रधान, आदर्शप्रधान, मर्यादाप्रधान **'राम'** नाम है। यह तो व्याकरणकी दृष्टि हुई। लेकिन व्याकरणके साथ-साथ जैसे हम रूपकी व्याख्या करते हैं कि कंगन अपनी धातु सोना में था, वहाँ से निकाला गया; इसी प्रकार ये जितने भी शब्द होते हैं ये अपने मूल धातु में होते हैं और ज्यों-ज्यों रूप प्रकट होता है, त्यों-त्यों साथ-ही-साथ नामकी अभिव्यक्ति होती है। रूपके साथ-साथ नामकी अभिव्यक्ति होती है। वेद में बताया-

'नामरूपे व्याकरवाणि ।'

'व्याकरण' शब्दका क्या अर्थ है ? **'विशिष्टां आकृतिं प्रापयामि।'** शब्दको विशिष्ट आकृति देना। **'रमु'** धातु है तो उसको **'रमणं'** रूप देना, **'राम:'** रूप देना, **'रमणीयं'** रूप देना, **'रमितव्यं'** रूप देना, **'रमिष्यते'** रूप देना, **'रमते'** रूप देना-यह व्याकरणका काम है। इसी प्रकार सांख्य यह बताता है कि जैसे धातु से नाना प्रकारकी आकृति बनती है, इसी प्रकार शब्दके बीज से नाना प्रकार के शब्द बनते हैं। इनको

हम बीजाक्षरके नाम से पहचानते हैं। **'क्लीं'** यह काम बीज है। यह हमारी कामनाको परमात्मा तक पहुँचाता है।

तो हमारे कहनेका अभिप्राय क्या है कि जैसे-जैसे पदार्थ सूक्ष्मता से स्थूलताकी ओर आता है, कारण से कार्य बनता है, वैसे-वैसे शब्द भी सूक्ष्म से स्थूल होता जाता है। इसलिये परावाक्, पश्यन्तीवाक्, मध्यमावाक् और वैखरीवाक्के रूप में वेद में वर्णन है। तो श्रीमद्भागवत के ग्यारहवें स्कन्ध में हमारे शब्दोंकी अभिव्यक्तिका निरूपण आया है-

स एष जीवो विवरप्रसूतिः
प्राणेन घोषेण गुहां प्रविष्टः।
मनोमयं सूक्ष्ममुपेत्य रूपं
मात्रा स्वरो वर्ण इति स्थविष्ठः॥

(भागवत 11.12.17)

जो परावाक् चैतन्यवाणी है, वही कैसे पश्यन्तीवाणीके रूप में आती है और उससे मध्यमाका प्रकाश कैसे होता है, वैखरीका प्रकाश कैसे होता है ? जैसे परमात्मा ही संसारके रूपमें प्रकट हुआ है, सम्पूर्ण रूपोंके रूप में जैसे भगवान्की अभिव्यक्ति हुई है, वैसे शब्दके रूप में भी भगवान् ही प्रकट होता है। पांवका चलना-यह भगवान्का प्राकट्य है। ऐसा वैज्ञानिक विवेचन है कि एक वस्तु जो है, वह कैसे रूपान्तर और शब्दान्तरको प्राप्त होती है और रूप और शब्दकी अभिव्यक्ति में आती है-इसका निरूपण किया हुआ है।

कहनेका अभिप्राय यह है कि एक भगवान् भिन्न-भिन्न प्रकारके भावकी अभिव्यंजनाके लिये पृथक्-पृथक् रूप ग्रहण करता है और पृथक्-पृथक् नामका रूप भी ग्रहण करता है। इसलिये, यह नाम और रूप ईश्वरके अस्तित्व में प्रमाण भी हैं और ईश्वरके लक्षण भी हैं।

नाम रूप दुइ ईश उपाधी।
अकथ अनादि सुसामुझि साधी॥

नाम, रूपकी अभिव्यक्ति से इसके अभिव्यंजक कारणरूप ईश्वरकी सिद्धि भी होती है और नाम, रूप ईश्वरकी उपाधि भी हैं। तो यह नाम, रूपकी अभिव्यक्ति ईश्वरका साधक भी है और ईश्वरका प्रमापक भी है। इसलिये अपने जीवनको, अपने हृदयको यदि ईश्वरके साथ जोड़ना हो, ईश्वरकी ओर ले चलना हो तो नाम, रूपका आश्रय लेकर अनाम और अरूप जो परमात्मा है, उसको समझनेकी चेष्टा करनी चाहिये। यह साधन है, यह पथ है, यह मार्ग

है। यदि मार्गको छोड़ देंगे, यदि साधनको छोड़ देंगे, यदि उपायको छोड़ देंगे तो उपेय की प्रतिपत्ति नहीं होगी। इसलिये नाम, रूपका सहारा लेकर, स्थूलका सहारा लेकर सूक्ष्म में प्रवेश करना चाहिये।

'यस्यां भूमौ निपतितस्तामालम्ब्य विमुच्यते'

जिस भूमिमें मनुष्य गिरा हुआ है, यदि वहीं से पकड़कर पहली सीढ़ी, दूसरी सीढ़ी-इस क्रमसे आगे जायेगा तो सूक्ष्म-से-सूक्ष्म नाम और सूक्ष्म-से-सूक्ष्म रूप और उसके बाद अनाम और अरूप परमात्माका साक्षात्कार होगा। और, सीढ़ीको ही छोड़ देंगे, साधनको ही छोड़ देंगे या पकड़ेंगें ही नहीं तो परमेश्वरके पास पहुँचनेका और कोई मार्ग नहीं रह जाता है।

तो नारायण, भगवन्नामका आश्रय लेकर इस मार्ग में आगे बढ़ना चाहिये।

ॐ, शांति, शांति, शांति।

*

प्रवचन : 3

जब हम भगवान्‌का नाम उच्चारण करने लगते हैं तब आलस्य, प्रमाद और निद्रा-इन तीनों पर विजय प्राप्त करनेकी एक युक्ति मिल जाती है। आलस्य करोगे तो नाम कैसे लोगे ? भूल जाओगे तो माला हाथ से गिर जायेगी। ध्यान करने में निद्रा भले आ जाये, नामोच्चारण में निद्रा कैसे आवेगी ? तो तमोगुणी वृत्तियों पर विजय प्राप्त करनेका सरल-से-सरल तरीका यह है कि आप भगवान्‌का नाम लें। सोवें नहीं, असावधान हों नहीं और आलस्य करें नहीं। निष्क्रियता में यदि सत्त्वगुणकी वृद्धि न हो और मन पवित्र न हो तो निष्क्रियता में तमोगुण आजाता है। परन्तु, भगवान्‌का नाम लेना तो निष्क्रियता नहीं है, वह तो सक्रियता है। तब तमोगुण कैसे आवेगा ? यदि कभी तमोगुण आता मालूम पड़े तो सावधान हो जाना चाहिये। यहाँ तक कि सत्त्वगुणकी शांति भी आ रही हो, तब भी एक बार सावधान हो जाना चाहिये। नाम न छूटे। यदि नाम-जपके समय आपके सामने यह प्रश्न आवे कि शांति बड़ी कि नाम-जप बड़ा ? तो आप निर्भय, निर्द्वन्द्व होकर कह दीजिये कि हमको शांति नहीं चाहिये, हमको तो नाम चाहिये। ऐसी कई लीलायें आती हैं भगवान्‌की।

दारुक पंखा झल रहा था। सत्यभामा, श्रीकृष्ण सिंहासन पर बैठे हुये थे। प्रेमका आवेश हुआ और दारुकके शरीरमें कम्प हुआ। आँख में आँसू आये, शरीर में रोमाञ्च हुआ और ऐसा लगा कि पंखा झलते-झलते बस मैं ध्यानमग्न हो जाऊँगा, बस समाधि लग जायेगी। उसने झट समाधिको फटकार दिया कि सेवा में बाधा डालनेके लिये आयी है। जा, तेरे जैसी हजार-हजार समाधियोंका मैं परित्याग कर सकता हूँ। परन्तु, यह अपने प्रियतम प्रभुकी सेवा में जो आनन्द है; उसको मैं नहीं छोड़ सकता।

एक बार अयोध्याजी में जानकीघाट पर संतोंकी सभा जुड़ी हुई थी और भगवान्‌की लीला-चर्चा हो रही थी। एक संत हाथ में बड़ा पंखा लेकर संतोंको झल रहे थे। झलते-झलते उनको ऐसा आनन्द आया कि वे बेहोश होकर पटसे गिर पड़े। गिर पड़े तो जो भगवान्‌की लीलाचर्चा हो रही थी उससे लोगोंका मन हट गया। दो-तीन संतों ने झट उन्हें उठाया, अलग ले गये, मुँह पर पानी छिड़का, पंखा झला, होश में किया। बाद में संतोंके सत्संग में यह निर्णय कर दिया गया कि अब आज से इनको यह पंखा झलनेकी सेवा न

दी जाये। क्यों ? इनकी वजह से भगवान्‌की लीला-चर्चा में विघ्न पड़ता है। यदि ऐसे बेहोश होकर गिर पड़ेंगे, चिल्लायेंगे तो कई संतोंका ध्यान उधर जायेगा, इनको उठाना पड़ेगा, सेवा करनी पड़ेगी। अब ये भगवत्-सेवाके अधिकारी नहीं हैं।

अपनी निष्ठा में सबसे बड़ी महत्त्वबुद्धि होनी चाहिये।

आपने सुना ही होगा कि पुण्डरीक भक्त अपने माता-पिताकी सेवा कर रहे थे, पांव दबा रहे थे। स्वयं विट्ठल भगवान् आकर सामने खड़े हो गये। इशारा किया पुण्डरीक ने कि चुप रहना, बोलना नहीं। ईंट वहाँ रखी थी, उसको उनकी तरफ कर दिया कि इस पर आप बैठ जाइये। पर विट्ठल बैठे नहीं, खड़े हो गये। अपनी कमर पर दोनों हाथ रख लिये। 'अरे भगतजी, जरा हमसे भी तो बात करो।' वे बोले कि मैं अपने माता-पिताकी सेवा कर रहा हूँ, पूरी हो जाये तब आपसे बात करूँ। भगवान् ने कहा कि मैं चला जाऊँगा। पुण्डरीक बोले कि जिस सेवा से प्रसन्न होकर तुम आये हो यदि वह सेवा मैं करता रहूँगा तो तुम्हें पुनः-पुनः आना पड़ेगा। इसका अर्थ है निष्ठा।

यदि आप भगवान्‌का नाम लेते हैं तो नाम-जप में विघ्न डालनेके लिये चाहे समाधि आवे-भाव-समाधि हो, चाहे निरोध-समाधि हो-उसको हाथ जोड़कर कह दिया कि तुम जरा बाद में आना ! अभी हमारी माला पूरी हो जाने दो ! हमें भगवान्‌का नाम लेने दो। जहाँ भाव रहता है, वहाँ आलस्य, निद्रा, प्रमाद कहाँ से आवेंगे ? वहाँ तो समाधि भी नहीं आ सकती। स्वयं भगवान् भी आपके नाम-जप में बाधा नहीं डाल सकते !

तो एक बात तो यह हुई कि तमोगुणी वृत्तियों पर विजय प्राप्त करनेके लिये नामका जप बड़ा भारी सहारा है।

अच्छा, आप नाम-जप करेंगे तो किसीको गाली कैसे देंगे ? नाम-जप करेंगे तो किसीकी निन्दा कैसे करेंगे ? नाम-जप करेंगे तो किसीकी चुगली कैसे करेंगे ? घंटे, दो-घंटे तो आपके, बिना निन्दा किये, बिना चुगली किये, बिना झूठ बोले, बिना संसारकी चर्चा किये निकल जायेंगे। तो हिंसा गयी, चुगली गयी, झूठ गया। नाम लेते हैं तो आपके दोष-दुर्गुण छूटते हैं कि नहीं ? दुर्भावना छूटती है कि नहीं ?

अच्छा, नाम ले रहे हैं तो आपका राग कहाँ है ? कई-कई लोग ऐसे होते हैं महाराज कि वे नाम भी लेते हैं और दुनिया में राग भी करते हैं ! उनकी बात छोड़ दो। एक सज्जन थे। उनका हमसे प्रेम हो गया। बहुत पुरानी

बात है। तो हमारे मित्रोंको यह बात पसंद नहीं आवे। अंतमें मैं कहीं बाहर गया हुआ था तो बनारसकी एक गुफामें बैठकर उन्होंने अनशन प्रारम्भ कर दिया कि जब तक लौटकर नहीं आवेंगे, हमारी बात नहीं मानेंगे, तब तक हम यहीं गुफा में बैठे रहेंगे। किसी ने गौरीशंकर गोयन्दका से कहा। तो वे बेचारे अपने आदमियोंको लेकर गये और उनको वहाँ से उठाकर ले आये। हनुमानप्रसादजी से बात कही गयी। तो उन्होंने हमको तार दिया कि जल्दी आ जाओ। मैं आया तो उसने तीन शर्त रखीं-या तो हमको भगवान् प्रत्यक्ष दर्शन दे दें तब मैं राग छोड़ दूँगा और या तो हमारा ध्यान लग जाये भगवान्का, तो मैं राग छोड़ दूँगा। और, नहीं तो जैसे मैं कहूँ वैसा इनको करना पड़ेगा ! हनुमानप्रसादजीसे सलाह हुई कि क्या करना चाहिये ? तो उन्होंने उसको कहा कि अच्छा हम तुमको एक अनुष्ठान बताते हैं, तुम छः महीना इसको करो। इससे तुम्हारा राग कम हो जायेगा। तो उस आदमीको झूसीमें रखा गया। छः महीनेका अनुष्ठान करने बैठा। वह अनुष्ठान तो अभी पूरा हुआ ही नहीं था, कोई ऐसा प्रसंग पड़ा कि हमको झूसी जाना पड़ा। और, जब गये तो उसने बताया कि हम तो मंत्र जपते हैं, लेकिन इसलिये नहीं कि हमारा राग छूट जाये; इसलिये जपते हैं कि तुम हमारे अधीन हो जाओ ! और देखो हमारे मंत्रकी सफलता ! तुमको बीच में ही आना पड़ा। तो हमारा अनुष्ठान तो बिलकुल सफल हो रहा है।

तो नारायण, कई लोग राग छोड़ना चाहते नहीं। अभी वह व्यक्ति है भला ! बस उसका अन्त यही हुआ कि उसका ब्याह हो गया, चार-छः बच्चे हो गये तो मन लग गया। प्रेम तो उसका अब भी है, पर लग गया अपने काम में !

देखो, कई लोग भगवान्का नाम-जप करना तो चाहते हैं, परन्तु राग छोड़ना नहीं चाहते हैं। भगवान्के नामके जप में सबसे बड़ी बात यह है कि जब बार-बार भगवान्का नाम लेंगे, अभ्यास होगा तो संसार में जो तृष्णा है, राग है और संसारी कर्मोंकी ओर प्रवृत्ति है, वह छूटेगी। जैस हीरे से हीरा कटता है, वैसे राग से राग कटता है। महाप्रभु चैतन्यदेव कहा करते थे कि हाय-हाय, हमारा नाम से अनुराग नहीं हुआ ! रोते थे प्रभो,

नयनं गलदश्रुधारया वचनं गद्गदरुद्धया गिरा।
पुलकैर्निचितं वपुः कदा तव नामग्रहणे भविष्यति ॥

कोई भी स्थान पर बैठकर, किसी भी समयमें, कोई भी आदमी भगवान्का नाम ले सकता है।

क्या द्विजाति क्या शूद्र,
ईश को वेश्या भी भज सकती है ।
भक्तिभाव में वेश्याको भी,
शुचिता क्या तज सकती है ?

तो नाम से जब राग हो जाता है तो रजोगुणकी निवृत्ति हो जाती है। नामकी क्रिया होगी तो तमोगुणी क्रिया मिट जायेगी और नाम से जब राग होगा तब रजोगुणी भावना मिट जायेगी और जब एकांतमें बैठकर पवित्र भावना से भगवान्‌के नामका उच्चारण करने लगेंगे तो दूसरी वस्तुओंका मन में आना मिट जायेगा। उस समय सात्त्विककर्मों में भी रुचि नहीं होती है।

तो तमोगुणके नाशके लिये नाम रजोगुण है। क्योंकि, क्रिया है। और, रजोगुणके नाशके लिये नाम सत्त्वगुण है। क्योंकि इसमें एकाग्रता आती है। गंगा किनारे एक महात्मा थे। वे रातके समय जब सब सो जाते तो जोर से चिल्लाते-**'तू-ही-तू, तू-ही-तू'** तेरे सिवाय और कोई नहीं। यही उनका महामंत्र था।

यह भगवान्‌के नामका जो आनन्द नहीं आता-इसका कारण क्या है ?

एक दिन रात में स्वर्गाश्रम में बैठा था गंगाजीके किनारे। एक सज्जन आये। संन्यासी होनेके बादकी बात है। बोले, 'स्वामीजी, मैं दुनिया में कुछ नहीं चाहता। स्त्री नहीं, पुत्र नहीं, धन नहीं, अपना शरीर भी नहीं चाहता। और, यदि मुझे विश्वास हो जाये कि मुझे आनन्द मिलेगा तो आप आज्ञा करो, मैं गंगाजी में कूदनेको तैयार हूँ। परन्तु मैं आनन्द चाहता हूँ! और कुछ नहीं चाहता हूँ। कहाँ से आनन्द हमको मिलेगा-यह नहीं मालूम। समाधि से मिले, ईश्वर से मिले, ब्याह से मिले, मरने से मिले, त्याग से मिले-जैसे मिले वैसे, हमको तो आनन्द चाहिये। हम आनन्दके लिये आये हैं।'

मैंने उससे पूछा कि तुम सचमुच आनन्दके सिवाय और कुछ नहीं चाहते हो ? तुमको और कोई इच्छा नहीं है ? वह बोला कि हाँ महाराज, इतनी बात हमारी समझमें आ गयी है कि हम जितनी खटपट दुनिया में करते हैं, वह आनन्दके लिये ही करते हैं। आनन्दके लिये धन कमाया, आनन्दके लिये ब्याह किया, आनन्दके लिये बच्चा पैदा किये। आनन्दके लिये ही सब कुछ चाहते हैं। परन्तु, आनन्द ही नहीं मिलता। एक आनन्दके सिवाय हमारे मन में दूसरी कोई इच्छा नहीं है। तो मैंने कहा कि अच्छा बैठो। वहीं गंगाके किनारे, चाँदनी रात-बड़ी धीमी-धीमी वायु चल रही थी। हमको तो चाँदनीका,

शीतलताका, गंगाजीकी जो मंद-मंथर गति में कल-कल ध्वनि थी, उसका आनन्द आ रहा था। मैंने कहा कि बैठो। वह आसन से बैठ गया। मैंने उससे कहा कि अच्छा, अब तुम हमारी एक बात मानो-यह जो आनन्दकी इच्छा तुम्हारे मन में है, इस इच्छाको छोड़ दो। उसने कहा कि अच्छा ! अब मैंने आनन्दकी इच्छा भी छोड़ दी और उसके बाद उसके शरीरकी यह दशा हुई-जैसे वह हर्षोल्लास से फूल रहा हो ! खिल गया उसका चेहरा और आध-घंटे तक जैसे उसकी आनन्द समाधि लग रही हो। बैठा रहा और जब उठा, तब किया दण्डवत् प्रणाम और बोला कि हमको आनन्द मिल गया।

असल में हमारे आनन्दमें, हमारी भगवत्-प्राप्ति में यह जो इच्छायें हैं, यही बाधा डालती हैं और इच्छा चेतनको घेरकर उसको **'अहं'** बना देती है। जो इच्छाओं से घिरा हुआ नहीं है, उस चेतन में **'अहं'**भी नहीं है। **'अहं'** वहीं है जहाँ चेतन इच्छाओं की परिधि में बँधकर एक परिच्छिन्न केन्द्रके रूप में प्रकट हो गया है। यह इच्छाओंकी परिधि है, इच्छाओंका बंडल है। आप नामका उच्चारण कीजिये। नाम, नाम, नाम, नाम ! नामके सिवाय रूपकी भी इच्छा न हो। नामके सिवाय समाधिकी भी इच्छा न हो। नामके सिवाय वैकुण्ठकी भी इच्छा न हो। यह जो इच्छाहीन नाम है, असल में यह नाम परमात्माकी सबसे सन्निहित उपाधि है। रूप तो पृथक्ता भी कर दे। स्त्री अलग है, पुरुष अलग है- दोनों पञ्चभूतके हैं। लेकिन रूपके अलगाव से दोनों अलग हो गये हैं। परन्तु, नाम रूपके समान पृथक्ताकी स्थापना नहीं करता। एक व्यक्तिके दो नाम भी, दस नाम भी हो सकते हैं। नाम, नाम, नाम और देखें आप परमानन्दका उदय होगा। असल में नाम ही परमानन्द है। इच्छाओंके कारण जब हम नाम से कुछ पाना चाहते हैं तब वह कहता है,' मैं तो इनके घर में बैठा हुआ हूँ और ये दूसरेको चाहते हैं। ये हमारा तिरस्कार कर रहे हैं '। बस इतनी-सी बात है। केवल इतनी-सी बात है कि नाम आपकी जीभ पर, नाम आपके कण्ठ में, नाम आपके हृदय में, नाम आपके सिर में। और, आप देख रहे हैं कहाँ ? देख रहे हैं आप एक घंटा बाद, छः घंटा बाद, एक मील दूर, छः मील दूर। देख रहे हैं आप दूसरेकी ओर और नाम नरेश, नाम भगवान्, नाम ब्रह्म आपके हृदय में बैठा हुआ है।

देखो, यह तमोगुणकी निवृत्तिके लिये रजोगुण है नाम और रजोगुणकी निवृत्तिके लिये सत्त्वगुण है नाम और सत्त्वगुणकी निवृत्तिके लिये निर्गुण है नाम। अच्छा, निर्गुण कैसे है ? असल में नामके पेट में क्या है ? आप

किसका नाम ले रहे हैं ? जिसका नाम ले रहे हैं, वह प्रकृतिके गुणों से परे है कि नहीं है ? यदि प्रकृतिके गुणों से परे नहीं है तो भगवान् नहीं है। और, यदि प्रकृतिके गुणों से परे है तो वह भगवान् है। आप जिसका नाम ले रहे हैं, वह क्या प्रकृतिका विकार है ? आप जिसका नाम ले रहे हैं, वह क्या प्रकृति है ? नहीं-नहीं, वह तो प्रकृतिका नियन्ता, प्रकृतिका आश्रय, आधार, प्रकृतिका प्रकाशक, प्रकृतिका स्वामी, वह प्रकृति से अतीत और प्रकृतिके गुणों से अतीत है। आपके नामकी वृत्ति जब उसमें गयी तो निर्गुण,गुणातीतका नाम होनेके कारण यह नाम गुणातीत हो गया और यह न केवल तम और रजको, बल्कि सत्त्वगुणको भी मिटा देगा।

अच्छा भाई, गुणातीतका तो नाम है, परन्तु अभी अविद्या बन रही है। अविद्या क्या है ? उस गुणातीतको अपने से अलग जानते हो-यही अविद्या है। देखो, जब तक तुम अपनेको गुणी नहीं मानोगे और उसमें कोई विशेष गुण नहीं मानोगे और अपने में कोई विशेष गुण नहीं मानोगे, तब तक भेद हो ही नहीं सकता। असल में दृष्टि गुण पर है, वस्तु पर नहीं है। तो जब हम उस निर्विशेषवस्तुका नाम उच्चारण करते हैं-जिससे जगत् अलग नहीं है, जीव अलग नहीं है-तब नाम निर्विशेष हो जाता है और निर्विशेष ब्रह्मका साक्षात्कार हो जाता है।

तो कहनेका अभिप्राय यह है कि आखिर आप कुछ चाहते हैं कि नहीं ? तो यदि आप दुश्चरित्रताको, दुर्भावनाको, दुर्गुणको मिटाना चाहते हैं तो भगवान्का नाम लीजिये। यदि आप राग-द्वेषको मिटाना चाहते हैं तो भगवान्का नाम लीजिये। यदि आप अहंकारको मिटाना चाहते हैं तो भगवान्का नाम लीजिये। यदि आप प्राकृतगुणों से अतीत परमेश्वर से एक होना चाहते हैं तो भगवान्का नाम लीजिये। और, यदि आत्माके रूप से ही भगवान्का साक्षात्कार करना चाहते हैं तो भगवान्का नाम लीजिये। इतना सुगम है यह नाम।

मधुरमधुरमेतन्मङ्गलं मङ्गलानां
सकलनिगमवल्लीसत्फलं चित्स्वरूपम् ।
सकृदपि परिगीतं श्रद्धया हेलया वा
भृगुवर नरमात्रं तारयेत् कृष्णनाम ॥

मधु-क्षरण करता हुआ है यह नाम। गोपी कहती है, 'सखी, यह दो अक्षर **'कृष्ण'**-इसमें कितना अमृत भरा हुआ है' ! यह कौन-सा रसायन है। पंडितराज जगन्नाथ बोलते हैं,

'श्रीकृष्णेति रसायनं रसय रे, शून्यैः किमन्यैः श्रमैः ।'

अरे, झूठे श्रम में क्यों फँसे हो ? सब व्यर्थ है। दूसरे सारे-के-सारे श्रम शून्य हैं, निष्फल हैं।

'राम नाम को अंक है, सब साधन हैं सून ।'

सारे-के-सारे साधन शून्य हैं और राम नाम अंक है। बिना अंकके शून्यकी कोई कीमत नहीं होती।

'श्रीकृष्णेति रसायनं रसय रे'

अरे पीओ, छक-छककर पीओ ! इसमें पैसा लगता नहीं। इसमें अन्न देना नहीं पड़ता ! इसमें घर छोड़ना नहीं पड़ता। इसमें पति-पत्नी से विमुख होना नहीं पड़ता। घर में बैठे भगवान्‌का नाम लो ! रात में लो, दिन में लो ! सोते लो, चलते लो। बीमारी में लो, आराम में लो। पवित्रता में लो, अपवित्रता में लो। जहाँ तुम हो, वहाँ नाम है। जहाँ ब्रह्म है, वहाँ नाम है। इस नामका उच्चारण करो। यह रसायन है। तुम्हारे सब दुःखोंकी यह दवा है। सब शोकोंकी यह महौषधि है।

आपको महिमाकी बात सुनावें।

पाञ्चरात्रकी एक सौ आठ संहिताओं में से एक **'सात्वतसंहिता'** है। उसमें एक श्लोक आया है, जरा आप ध्यान देकर सुनिये-

नामैकं वा यस्यवार्चा प्रविष्टं,
बुद्धयान्विष्टं कर्णरन्ध्रङ्गतं वा ।
दग्ध्वा पापं शुद्धसत्त्वात्तदेहं,
कृत्वा साक्षात् संविधत्तेऽनवद्यम् ॥

एक नाम, केवल एक नाम ! विश्वास नहीं होगा आपका जल्दी, हम जानते हैं ! अरे, कोई ऐसा समय था, जब मुझे भी विश्वास नहीं होता था। एक पापका प्रायश्चित्त बारह वर्षका। हमने पराशर-स्मृति पढ़ी थी। गाँवमें जब किसीके गाय, बैल मर जाते थे तो हमारे वंश से प्रायश्चित्त पूछने लोग आते थे। उसमें प्रायश्चित्त लिखे हुए हैं कि खूँटेसे बँधी गाय मर जाये तो उसका क्या प्रायश्चित्त होता है ? साँप काटने से मर जाये तो क्या प्रायश्चित्त होता है ? तो वह पराशर-स्मृति मैंने पढ़ी थी। एक पापका बारह महीनेका प्रायश्चित्त-धरती पर सोओ, एक समय भोजन करो, अमुक-अमुक तीर्थों में घूमकर प्रायश्चित्त करो। परन्तु, जब हमने नामका माहात्म्य पढ़ा, विश्वास ही न हो।

'नामैकं वा यस्यवार्चा प्रविष्टं

जिसकी वाणी में एक नाम प्रविष्ट हो गया, बुद्धि से जिसने एक नामका अन्वेषण किया, अनुसंधान किया, जिसके कान में एक नाम पड़ गया-वह वाणी में आया हुआ एक नाम, बुद्धि से अन्विष्ट एक नाम और कर्णरन्ध्र में अनुविष्ट नाम, केवल एक नाम ! जल्दी विश्वास नहीं होगा , बात समझ में नहीं आवेगी ! साधारण लोग इसको नहीं मान सकते ! वह केवल एक नाम,**'दग्ध्वा पापं शुद्धसत्त्वात्तदेहं, कृत्वा साक्षात् संविधत्तेऽनवद्यम्'**- सारे पापोंको भस्म कर देता है और देहको शुद्ध-सत्त्वात्त कर देता है और निर्दोष, निष्कलंक, निर्मल आत्मतत्त्वका साक्षात्कार करा देता है।

आप से जो पाप हुए हैं, उन्हींको आप देख रहे हो। इस क्षणके पहले, इस जन्म में या पूर्वजन्म में जो पाप हो गये हैं, उन्हींको तो आप देख रहे हो ! हम कहते हैं कि आप ने एक बार नामका उच्चारण किया और वे भस्म हो गये। अब आपको विश्वास नहीं होता ! आप इस बातको नहीं मानते ! 'महाराज, कैसे हम विश्वास करें कि हमारे सब पाप नष्ट हो गये हैं'? असल में आपके जितने पाप हैं, वे सब आपके मन में ही तो बैठे हुए हैं। आपने भगवान्का नाम लिया और वे ध्वस्त हो गये, नष्ट हो गये।

हमको अपने बचपनकी एक बात याद आ गयी। हमारे पितामह गंगा स्नानके लिये जाते थे। हम छोटे थे, हमारे कपड़े उतारकर किनारे रख देते थे और हमको लगता ठंडा, तो हम छटपटाते कि हम नहीं नहायेंगे। वे बोलते कि देखो, गंगाजी में नहाने से सब पाप मिट जाते हैं ! फिर वे बताते कि देखो, अब तुम आये नहाने गंगाजी में और तुम्हारे पाप वह पेड़के ऊपर बैठे हैं। बिलकुल छोड़कर भाग गये पाप। 'फिर तो नहीं लगेंगे'? 'नहीं, फिर जब बाहर निकल कर कपड़े पहनोगे तब फिर लग जायेंगे'। आप इसको हँसी में मत लीजिये भला-राम, राम, राम; कृष्ण, कृष्ण, कृष्ण; नारायण, नारायण, नारायण; शिव, शिव, शिव-एकाध बार आप नाम ले लीजिये, नारायण अब तक के पाप बिलकुल नष्ट हो गये। इस समय यदि आपको इस बात पर विश्वास न हो तो हम आपके सब पुराने पाप लेनेको तैयार हैं ! हैं ही नहीं, आप देंगे कहाँ से ? आप बिलकुल निष्पाप हैं। पर एक बात है, पाप मुर्दा होकर भी जिंदा हो जाता है। जिंदा कब होता है ? जब यहाँ से उठकर आप फिर से पाप करेंगे, वह मुर्दा पाप भी जिन्दा हो जाता है। यदि आप ऐसी प्रतिज्ञा कर लेते हैं और ऐसी सावधानी बरत लेते हैं कि अब तक के पाप तो हमारे सारे-के-सारे नष्ट हो गये, भस्म हो गये, जल गये ! उनकी कोई फिक्र मत कीजिये। क्योंकि, भगवान्का नाम

लिया है। राम-नामका, कृष्ण-नामका उच्चारण किया है। परन्तु अब आगेके लिये पाप नहीं करना।

राम-राम कहि जे जमुहाहीं।
तिनहिं न पाप-पुञ्ज समुहाहीं॥
राम नाम अवलंबन एकू।

एक मात्र भगवान्‌का नाम अवलम्बन है। गोस्वामी तुलसीदासजी ने कहा,

नहि कलि करम न भगति विवेकू॥

भक्तिका भी नाम है, देख लेना। हमको सिवाय गोस्वामीजी के और कोई शास्त्र में ऐसा वचन नहीं मिला है जो कह दे कि कलियुग में भक्ति नहीं है भला। यह गोस्वामीजीका क्रांतिकारी कदम है। बड़ी भारी क्रांतिकी बात उन्होंने की-**'नहि कलि करम'**-बोले कि धर्मकी तो बात छोड़ो। कर्म ही नहीं है तो धर्म कहाँ से होगा ? **'न भगति'**-भक्ति भी नहीं है-जिसमें कर्मकी जरूरत नहीं, पैसेकी जरूरत नहीं, खाली भाव से हो जाती है। वह भक्ति भी नहीं है। और, विवेक तो बड़ी दूरकी चीज है! तो मनुष्यके लिये अवलम्बन क्या है ?

'राम नाम अवलंबन एकू'।

राम नामका अवलम्बन है और **'एकू'** कहकर और काट दिया! उसके साथ दूसरा कुछ पख लगानेकी जरूरत नहीं है। शर्त-वर्त लगानेकी जरूरत नहीं है। राम नामका अवलम्बन है। गोस्वामीजी ने यह चौपाई जब लिखी होगी, उनके ध्यान में यह बात जरूर रही होगी-

हरेर्नाम हरेर्नाम हरेर्नामैव केवलम्,
कलौ नास्त्यैव नास्त्यैव नास्त्यैव गतिरन्यथा।

भगवान्‌का नाम, भगवान्‌का नाम, भगवान्‌का नाम, केवल भगवान्‌का नाम। इस कलियुग में अन्यथा गति नहीं है, नहीं है, नहीं है। दूसरा कोई साधन नहीं है; कलियुग में गति प्राप्त करनेके लिये!

तो बाबा,

प्रीति परतीति जहाँ जाकी, तहँ ताको काज सरो।

गोस्वामीजी बोलते हैं-'प्रीति और परतीति'-**'प्रीति'** माने प्रेम और **'परतीति'** माने विश्वास-तो जहाँ जिसकी प्रीति, परतीति है वहाँ उसका काम बन जाता है।

मेरे तो माय-बाप दोउ आखर, हों शिशु अरनी अरो।

मेरे माँ-बाप तो दो अक्षर हैं-भगवान्‌का नाम। राम ही मेरे माँ-बाप हैं। **'त्वमेव माता च पिता त्वमेव'**। ईश्वर ही ऐसा होता है जो माँ भी होता है और बाप भी होता है। दुनिया में तो माँ अलग होती है और बाप अलग होता है। माँ-बाप में कभी-कभी लड़ाई भी हो जाती है। लेकिन रामका **'रा'** माँ-बाप दोनों है और **'म'** भी माँ-बाप दोनों है। जैसे बच्चे जिद्द कर बैठते हैं, वैसे मैं अब जिद्द पर उतर आया हूँ, हठ करता हूँ। हमने तो बाल-हठ पकड़ लिया है।

संकर साखि जौ राखि कहौं कछु, तौ जरि जीह जरौ।
अपनो भलो राम नामहिं ते, तुलसिहिं समुझि परो॥

यदि मैं कुछ छिपाकर बोलता हूँ तो मेरी जिह्वा जल जाये!

ये गुरु लोग महाराज, एकसाथ पूरी बात नहीं बता देते हैं। देखते हैं कि साधकका अधिकार ज्यों-ज्यों बढ़ रहा है, ज्यों-ज्यों उन्नति कर रहा है, त्यों-त्यों उसको बताते हैं। क्योंकि, असल में यह ऐसा गणित नहीं है कि उसका हल बता दिया जाये या कापी में से याद कर लिया जाये कि इस सवालका यह जबाब है। तो वह आदमी सीख ले और परीक्षा में पास हो जाये। हमको हल से यहाँ मतलब नहीं है। गणितकी प्रक्रिया आनी चाहिये। साधनाका अर्थ यह होता है कि तुम्हें गणित करना आ जाये। सवालका जबाब अगर एक बार गलत निकलेगा तो दूसरी बार सही निकल आवेगा। लेकिन इस सवालका जबाब कैसे निकालना है, वह गणितकी प्रक्रिया आ जानी चाहिये। स्कूलों में इसलिये नहीं पढ़ाया जाता है कि कापी में से जबाब याद करके लिख लिया जाये! स्कूलों में इसलिये पढ़ाया जाता है कि वह शैली अगर बालक सीख लेगा तो जीवनके किसी क्षेत्र में उसके द्वारा वह गणित कर सकेगा। जब गणित ही नहीं आया तो जबाब याद करने से क्या फायदा?

तो देखो, रामनाम तो लेना पड़ेगा। उसकी एक शैली होती है। तुम्हारा जीवन एक जगह बैठ गया है, वहाँ से उठ नहीं रहा है। बुद्धि श्रुतिविप्रतिपन्न हो गयी है। सुनते, सुनते, सुनते एक जगह बैठ गये। वहाँ से ऊपर उठना चाहते ही नहीं हो। ब्रह्म आवे तो जहाँ हम बैठे हैं वहाँ। ईश्वर आवे तो जहाँ हम बैठे हैं वहाँ। ध्यान, समाधि आवे तो जहाँ हम बैठे हैं वहाँ। उत्थान चाहिये न!

'उत्तिष्ठत् जाग्रत प्राप्तवरान्नि बोधत'।

तो तुलसीदासजी कहते हैं कि भगवान् शंकर साक्षी हैं, यदि मैं कुछ छिपाकर बोलता होऊँ तो मेरी जीभ गलकर गिर जाये। हमें अपना भला केवल भगवान्‌के नाम से समझ में आया है।

आपको यह मैं सुनाना चाहता हूँ-आप वेदान्तका श्रवण करें। कभी-न-कभी उस तत्त्वका साक्षात्कार होगा। पर, भगवान्‌का नाम जपते रहिये। जैसे बहुत सारे काम करते हैं, वैसे आध घंटे-घंटे भर भगवान्‌का नाम जप कर, फिर वेदान्तका श्रवण कीजिये। आप योगाभ्यास कीजिये! आपको कोई ध्यान लगानेके लिये आता है? अरे, उधारका ध्यान टिकने-विकने वाला नहीं है। हम इसके बड़े अनुभवी हैं भला। आपके मन में हजार वासना भरी रहेगी-इच्छा तो रहेगी बाहरकी चीजोंकी और आप सोचोगे कि हम आँख बन्द कर बैठे हैं! बैठे जाकर सिनेमा हाल में! अब वहाँ आँख बन्द कर रहें कि हम ध्यान करेंगे। अरे, बीच-बीच में आँख खुलेगी और सिनेमाके पर्दे पर आ जायेगी! क्योंकि तुम तो सिनेमा देखनेके लिये आये हो! जब तुम्हारे मन में दुनिया देखनेकी हजार इच्छायें भरी हुई हैं तो थोड़ी देर आँख बन्द करके बैठने से क्या होगा? तुम्हारी आँखको जबरदस्ती खींचकर खोलनेवाली हजार चीजें हैं। तो आप ध्यान कीजिये! पर, जितनी देर ध्यान लगे उतनी देर कीजिये। न लगे तो भगवान्‌के नामका जप कीजिये। आप वेदान्तका विचार कीजिये। जितनी देर विचार हो, ठीक है और जब विचार न हो तो भगवान्‌का नाम जपिये। आपको संसारकी वस्तुएं चाहिये। उनके लिये प्रयत्न कीजिये। परन्तु, जब आपको विश्राम मिले, जब आप बस में यहाँ-से-वहाँ जायें, मोटर में यहाँ-से-वहाँ जायें तो जो खाली समय है, उसमें भगवान्‌के नामका जप कीजिये। हम कुछ छिपाकर नहीं बोलते हैं। कोई बात इसमें गुप्त नहीं है। यह मन्त्रोंका मन्त्र है, यह यन्त्रोंका यन्त्र है, यह तन्त्रोंका तन्त्र है-भगवान्‌का नाम!

संकर साखि जो राखि कहौं कछु, तौ जरि जीह गरो।
अपनो भलो रामनामहिं ते, तुलसिहिं समुझि परो॥

विष्णुपुराण में कहा गया कि जप कीजिये, स्वाध्याय कीजिये और चित्तवृत्तिको एकाग्र कीजिये। और, चित्त-वृत्तिको एकाग्र कीजिये और फिर जप कीजिये। जप कीजिये और फिर चित्त-वृत्तिको एकाग्र कीजिये। जप और योगकी सम्पत्ति से परमात्माका प्रकाश होता है।

जपश्रान्तश्चरेद्ध्यानं ध्यानश्रान्तश्चरेद् जपम्।
जपध्यानपरिश्रान्त आत्मतत्त्वं विचारयेत्।

स्वामी श्रीयोगानन्दजी महाराज ने बाल्यावस्था में यह श्लोक हमको बताया था कि जप करते-करते थकान मालूम पड़े तो ध्यान करो। हाथ नीचे रख लो, माला रख दो और ध्यान करने लग जाओ। और, जब ध्यान

करते-करते मन न लगे तो फिर माला उठाओ हाथ में और फिर जप करने लग जाओ ! एक और भी बात है-अकर्तृत्व में जो स्थिति है, वह केवल सांख्यके विवेक से अथवा वेदान्तके आत्मविचार से होती है। तो ऐसी अवस्था में जितने भी साधन हैं, उसमें कर्तृत्व रहता है। तो जब जप किया जाता है, इसी से माला रखनेकी जरूरत होती है कि इतना जप हो गया-इसका भाव बने। और, जब यह भाव बनता है कि इतना जप हो गया तो भगवान् से कहते हैं कि प्रभु, इस जप से जो फल मिलनेवाला है, सुख मिलनेवाला है, वह आपको ही मिले। हमको न मिले। जपके फल से आप प्रसन्न हों, आप सुखी हों।

'भगवत्प्रसादसिद्ध्यर्थं'।

हम जपका फल प्रसन्नता अपनी ओर नहीं खींचना चाहते हैं, आपकी ओर देना चाहते हैं। तब समर्पण होगा। इसलिये, माला रखना भी अच्छा रहता है। यह साधन-भजनका एक मार्ग है। जब तत्त्वज्ञान हो जाये, कर्तापना मिट जाये, तब माला रखना चाहे नहीं रखना। लेकिन तत्त्वज्ञानके पूर्व जबतक कर्तापना है, तब तक माला रखने से भाव-समर्पणकी प्राप्ति होती है। हमारे श्रीउड़ियाबाबाजी महाराज मालाका इतना आदर करते थे। कोई गंगाजी गया तो बालू में कहीं माला गिर पड़ी। लौटकर आया, 'महाराज, माला गिर गयी'। तो वे बोलते थे, 'इतना दूध गंगाजीको चढ़ाओ। यह व्रत करो।' अच्छा उसके बाद बहुत करके वही माला मिल जाती थी और वह नहीं मिली तो दूसरी दे देते थे। परन्तु, कितना सावधान रहना चाहिये। आजकल लोग यात्रा करते हैं-पेटी तो नहीं खोती है और भगवान् खो जाते हैं। माला ही रेलगाड़ी में छोड़कर चले आते हैं। यह असावधानी नहीं होनी चाहिये।

तो नारायण, यह भगवान्का नाम ऐसा विचित्र कि इसका फल यमराजके पास नहीं है। पहले आपको इसकी कथा सुना ही दी है।

अवशेनापि यन्नाम्नि कीर्तिते सर्वपातकै : ।
पुमान्विमुच्यते सद्यः सिंहत्रस्तैर्मृगैरिव ॥

*

प्रवचन : 4

आप रूप देखते हैं, बहुत बढ़िया ! स्पर्श अनुभव करते हैं, बहुत बढ़िया ! भगवान्‌को सूँघते हैं, बहुत बढ़िया ! सुनते हैं भगवान्‌को, बहुत बढ़िया ! जरा भगवान्‌को चख कर देखिये !

तो भगवान् चखे कैसे जायेंगे ?

जब नाम होकर जिह्वा पर आवेंगे तब भगवान्‌का आस्वादन होगा। आपको पहले सुनाया-हमारे एक महात्मा हुए हैं श्रीरूपगोस्वामीजी महाराज ! वे कहते हैं कि भगवान्‌के नाम में इतना स्वाद है, इतना स्वाद ! आप जरा स्वाद लेते हुए नामका उच्चारण अपने मन में कीजिये। नाम में कितना स्वाद है, वे बोलते हैं-

तुण्डे ताण्डवीनि रतिं वितनुते तुण्डावलीलब्धये,
कर्णक्रोडकडम्बिनी घटयते कर्णार्बुदेभ्यः स्पृहाम् ।
चेतःप्राङ्गणसङ्गिनी विजयते सर्वेन्द्रियाणां कृतिं,
नो जाने जनिता कियद्भिरमृतैः कृष्णेति वर्णद्वयी ॥

जब हमारे मुख में भगवान्‌का नाम ताण्डव-नृत्य करने लगता है-वह परा वाली बात ज्ञानी लोग जानें और पश्यन्ती वाली बात योगी लोग जानें और मध्यमा वाली बात धर्मात्मा लोग जानें ! जब मध्यमा से जप होने लगता है तब वैखरी से छूट जाता है। जब पश्यन्ती से जप होने लगता है तब मध्यमा और वैखरी से छूट जाता है और जब परा से जप होने लगता है तो पश्यन्ती,मध्यमा और वैखरी से छूट जाता है ! भक्तों ने कहा है कि यह नाम कहीं से छूट जाता है तो हमने उस साधना-पद्धतिको हाथ जोड़ा। हमको नहीं चाहिये परा, नहीं चाहिये पश्यन्ती, नहीं चाहिये मध्यमा। जिस समय वैखरी से नामोच्चारण होता है, उस समय मध्यमा, पश्यन्ती और परा-इन तीनों से होता-ही-होता है, इसमें कोई संदेह नहीं। बिना परा से हुए पश्यन्ती से नहीं होगा, बिना पश्यन्ती से हुए मध्यमा से नहीं होगा, बिना मध्यमा से हुए वैखरी से नहीं होगा। वह तो जीभ पर जब नामोच्चारण होगा तो परा, पश्यन्ती और मध्यमाकी प्रक्रिया से ही तो वैखरी वाणी में आवेगा। इसलिये, हाथ जोड़ लिया हमने ज्ञान, योग और धर्मकी प्रक्रियाको ! हम तो चिल्लाते हैं भगवान्‌का नाम। हमारी जिह्वा पर भगवान्‌का नाम ताण्डव-नृत्य करता है।

'ताण्डव-नृत्य' का अर्थ है कि जल्दी-जल्दी और जोर-जोर से बोलना। जो जानते हैं मध्यमा, पश्यन्ती, पराको वे जानें। हम यह जानते हैं कि जब

वैखरी से नामोच्चारण होता है तो बाकी जो सूक्ष्म तीन वाणियाँ हैं, वे क्रियाशील रहती हैं। निष्क्रिय रह ही नहीं सकतीं।

'तुण्डे ताण्डवीनि रतिं वितनुते तुण्डावलीलब्धये ।'

जब भगवान्‌का नाम शंकरजीकी तरह ताण्डव-नृत्यके स्वर में जिह्वा पर नाचता है तो मन यही होता है कि एक मुख नहीं, हजार मुख होते ! भले लोग हमको दशानन कहें, मंजूर है ! भले हमको लोग शतानन कहें, मंजूर है ! सहस्रानन कहें, मंजूर है। परन्तु, हमारे हजारों मुँह हों और उनसे हम भगवान्‌का नाम राम, राम, राम; कृष्ण, कृष्ण, कृष्ण उच्चारण करें। क्योंकि, बड़ा स्वाद आता है। अच्छे काममें भला तृप्ति किसको नहीं होती है ?

'कर्णक्रोडकडम्बिनी घटयते कर्णार्बुदेभ्यः स्पृहाम् ।'

और, कानकी गोद में जब नाम आकर निवास करता है, जब सुनने लगते हैं-कोई कीर्तन कर रहा है ! अरे, वह कीर्तन नहीं कर रहा है ! वह अपने हृदय में भरे हुए नामामृतको उड़ेल-उड़ेलकर पिलाता है। उसका स्वाद लो न ! कथा में बैठोगे और दूकानकी बात सोचोगे तो कथाका स्वाद नहीं आवेगा। नामका उच्चारण करोगे और बात दूसरी सोचोगे तो नामका स्वाद नहीं आवेगा। जब कानके छिद्र में नामामृत प्रवेश करता है-रस, रस, रस भर जाता है ! यह आनन्द स्वरूप है। ब्रह्मका लक्षण है, आनन्द।

'आनन्दो ब्रह्मेति व्यजानात्'। **(तैत्ति.)**

'आनन्दाद्धयेव खल्विमानि भूतानि जायन्ते ।' (तैत्ति.)

आनन्द से ही वस्तुओंकी उत्पत्ति होती है।

तो जिस समय कान में यह आनन्दामृत, नामामृत उड़ेला जाता है; उस समय यही इच्छा होती है कि जैसे शेष भगवान्‌के हजारों कान हैं, वैसे हमारे हजारों कान हो जायें और उनसे हम भगवद्-नामामृतका श्रवण करें। धरती पर बैठे हैं-धरतीके कण-कण में से नामकी आवाज हो रही है। जलके तरङ्ग-तरङ्ग में नाम भरा हुआ है। संसारकी प्रत्येक वस्तु नामके द्वारा रूपायित हो रही है। नामकी हवा बह रही है। नामकी बांसुरी गूँज रही है। नाम में बैठे हैं, नाम में सोये हैं, नाम में चलते हैं। अरबों नाम हमको चारों ओर से घेरे हुए हमारे कान में प्रवेश कर रहे हैं।

'चेतः प्राङ्गणसङ्गिनी विजयते सर्वेन्द्रियाणां कृतिम्'

चित्त में **'कृष्ण'** नामका स्मरण होता है तब सब इन्द्रियोंका कर्तृत्व वहीं सिमट जाता है। बाहर न कुछ देखनेकी इच्छा होती, न सुननेकी, न छूनेकी, न सूँघनेकी, न चखनेकी, न चलने-फिरनेकी और न कुछ करनेकी ही।

'नो जाने जनिता कियद्भिरमृतैः कृष्णेति वर्णद्वयी'।

पता नहीं 'कृष्ण' ये दो अक्षर कितने अपार अमृत से उत्पन्न हुए हैं।

देखो, नाम रूपको अपनी गोद में लेकर आता है। शब्दके पेट में रूप रहता है। शब्द बीज है और रूप अंकुर है। प्रत्येक शब्दरूप बीज में से एक रूपांकुरका जन्म होता है। तो जब नामका आप उच्चारण करेंगे-यह जीभ में से आपके हृदय में जायेगा। हृदयके लिये बड़ा हितकारी और वहाँ जाकर चिपक जायेगा।

हमारे पास एक साधक रहते थे। एक दिन आये, बोले कि महाराज, बहुत दिन हो गये जप करते-करते, कुछ होता-हवाता नहीं है! अब छोड़ देंगे। हमने कहा कि अरे भाई, छोड़ो मत। माने नहीं और जिद्द पकड़ लिये कि हम तो छोड़ देंगे। हमने कहा कि अच्छी बात है, छोड़ दो। छोड़कर गये तो पन्द्रह-बीस मिनट बाद आये कि महाराज, छूटता नहीं। मैंने कहा कि नहीं, अब नाम लेना नहीं, तुम्हारे लिये मना हो गया है! घंटे भर में तो व्याकुल होकर रोने लगे और बोले कि नहीं, अब इसके बिना रहा नहीं जाता है। 'अरे तुम कहते हो कि इससे कुछ होता-हवाता नहीं! यह तो इतना कर गया कि तुम छोड़ ही नहीं सकते।' यह क्या फल नहीं है? फल तो यह है कि यह जिह्वा में गया तुम्हारे अन्तस् में और चिपक गया, आसक्ति हो गयी। देखो, पतिलोग पहले तो पत्नियोंको बोल देते हैं कि तुम जबसे आयी हो दुःख-ही-दुःख है, हम पहले ही अच्छे थे। तुम जहाँ जाना चाहो, चली जाओ! परन्तु जब वे जानेको तैयार होती हैं तो हाथ जोड़कर, पांव पड़कर मनाते हैं कि नहीं, तुम्हारे बिना हम जिंदा नहीं रहेंगे! यह क्या हुआ? इसीका नाम तो आसक्ति है।

तो नारायण, नामके साथ एक बार सम्बन्ध हो गया तो यह ऐसा सम्बन्ध है कि इसमें तलाक हो ही नहीं सकता। यहाँ तक कि अगर ब्रह्मज्ञान भी हो जाये और कोई चाहे कि हम नामको छोड़ देंगे तो ब्रह्मज्ञानीकी जिह्वा अपने आप ही हिलती रहेगी। समाधि में जिह्वाका चलना यदि बंद हो जायेगा तो समाधि से उठनेके बाद फिर जिह्वा चलने लगेगी। यह नाम तो ऐसा चिपकता है। जैसे परब्रह्म परमात्मा, जैसे आत्मा हमको छोड़कर कभी अलग नहीं हो सकता, वैसे व्यवहार में यह परमानन्द स्वरूप हमको छोड़कर कहीं जा नहीं सकता।

अब कोई कहते हैं कि हमारी इन्द्रियाँ नहीं मानतीं! नारायण कहो! आप जब नामका स्वाद लेने लगेंगे तो आँख भीतर देखेगी कि देखो यह नामका क्या रूप है! कान भीतर सुनेगा कि नामकी ध्वनि हो रही है। त्वचा भीतर

नामका स्पर्श करेगी। जिह्वा भीतर नामका स्वाद लेगी। नासिका नामका गंध सूँघेगी। यह नाम क्या है ? चिन्तामणि है।

'नाम चिन्तामणि'

इससे गंध लो, इससे रस लो, इससे रूप लो, इससे स्पर्श लो, इससे ध्वनि लो और इससे तन्मयता लो। यह नाम सब कुछ देनेके लिये आया है। यह नाम नहीं, अमृत है। यह आनन्द है, ब्रह्मस्वरूप है।

उपासना में ब्रह्म और दृश्य-वस्तुका विवेक नहीं किया जाता है। दृश्य-वस्तु में ब्रह्मकी अनुस्यूतताका चिंतन होता है। यह नहीं कि यह दृश्य है, जड– है और इसका प्रकाशक द्रष्टा अधिष्ठान इससे जुदा है। यह उपासनाकी प्रक्रिया नहीं है। उपासनाकी प्रक्रिया यह है कि **'नामब्रह्म'**-यह नाम साक्षात् ब्रह्म है। ब्रह्म कैसे है ? जैसा परमानन्द स्वरूप ब्रह्म है, यह बात श्रुति में कही जाती है; वैसा परमानन्द हमें नाम में ही अनुभव होता है। यह नाम बिलकुल परमानन्द स्वरूप होने से ब्रह्म है।

एक बात नाम में और है !

आपके घर में कभी झगड़ा-लड़ाई होती है कि नहीं ? अरे, घर-गृहस्थी में लड़ाई-झगड़ा तो होता ही होगा। तो उस लड़ाई-झगड़ेमें बात क्या होती है ? जैसे दो आदमी घर में हैं। तो एक आदमी चाहता है कि दूसरा आदमी हमारे मनके अनुसार चले। अब मन तो दोनोंके दो हैं। स्त्रीका मन है, पुरुषका मन है। दोनोंके मन दो हैं और अनादि परंपरा से वे दो ही चले आये हैं। थोड़ी देरके लिये मिला लेते हैं। नहीं तो वे रहते तो अलग-अलग ही हैं। तो जब एक आदमी चाहता है कि दूसरा आदमी हमारे मनके अनुसार चले और वह नहीं चलता, तब दोनों में लड़ाई हो जाती है। घर में जितना वैमनस्य है, इसका रूप यही है। चाहे स्त्रीके मनके अनुसार पुरुष चले और चाहे पुरुषके मनके अनुसार स्त्री चले और चाहे दोनों समझौता करके चलें। चाहे बाप-बेटा हों, चाहे भाई-बहन हों, चाहे भाई-भाई हों-मन मिलाकर ही चलना पड़ता है। दो व्यक्तियोंका मन बिलकुल एक सरीखा कैसे होगा ? जब मन नहीं मिलता है, तब लड़ाई हो जाती है। अगर आपके घर में कोई लड़ाई-झगड़ा होता है तो जरा अपने मनको दबा लीजिये और सामनेवालेके मनको पूरा हो जाने दीजिये। और, कभी जरूरत पड़े तो दूसरा भी दब जाये। तो अपने मनको दबाकर जो दूसरेके मनको प्रधान रखकर काम करेगा और उसमें मजा लेगा, असल में उसकी घर-गृहस्थी में हमेशा सुख बना रहेगा ! रोज खींचा-खाँची बनी रहेगी-इससे तनाव पैदा होता है।

अब जरा अपने प्यारे नामकी ओर देखिये। वह अपने मनके अनुसार आपको चलावेगा ही नहीं। वह तो आपके मनके अनुसार चलेगा। आपका प्यारा हो भगवान्‌का नाम। तो नामको आप कह दो कि अच्छा, जोर से! कहेगा कि अच्छा, जोर से। 'जरा जल्दी'। 'हाँ, जल्दी '।

कहते हैं कि एक लड़की-लड़केका ब्याह से पहले मिलना हुआ। लड़की ने पूछा कि आपको कैसी पत्नी पसंद आती है? तो उसने बताया कि जब हम चाहें कि बोले, तो बोले और जब हम चाहें कि चुप रहे, तो चुप रहे। तो लड़की ने कहा कि श्रीमान्, आप एक अच्छा-सा रेडिओ खरीदकर घर में रख लीजिये। आपको लड़की नहीं चाहिये, रेडिओ चाहिये। अरे भाई, लड़की भी तो कभी अपने मन से बोलेगी, अपने मन से भी गावेगी, मन से भी चलेगी। उसका भी मन होगा। खाली तुम्हारे ही मन-मन से काम करे, ऐसा कैसे होगा? लेकिन हम प्रत्येक लड़के और लड़कीको यह बात बता सकते हैं कि यदि वह नाम अपने हृदय में बसा ले तो वह कहेंगे कि हे नाम नाचो! तो वह नाचेगा। वे कहेंगे कि नाम गाओ, तो गावेगा। वे कहेंगे कि नाम, चुप रहो तो चुप रहेगा। माने वह आपके मनका अनुसरण करेगा और मनका अनुसरण करते-करते आपके मनको हजम कर जायेगा भला! यह भी एक अनुसरणकी पद्धति है। जब नाम आपके हृदय में पहुँचेगा तो आपकी इन्द्रियोंकी सम्पूर्ण कृतिको समेट लेगा। इसलिये कृष्ण, कृष्ण, कृष्ण-यह जो भगवद्-नाम है, इसमें कितने प्रकारके अमृत हैं!

देखो, ब्रह्म आनन्दस्वरूप है। आनन्द आकाशकी तरह एक परिपूर्ण वस्तु है। माने आनन्द न काल में कटे, न स्थान में कटे और न वस्तु में कटे, न हृदय में कटे, न बाहर कटे। सब जगह आनन्द-ही-आनन्द है। लेकिन वह जब इमलीमें आता है तब खट्टा हो जाता है और अंगूर में आता है तब मीठा हो जाता है। है तो आनन्द ही न! नमक में आता है तो वह नमकीन हो जाता है। उपाधिके भेद से आनन्द अनेक रूप में प्रकट होता है। असल में आनन्द है एक और उपाधियाँ हैं अनेक।

हम मोकलपुरके बाबाका दर्शन करनेके लिये जाते थे। तो वे कहते थे कि आओ, हम तुमको कुछ खिलाते हैं। क्योंकि उस समय हम कच्ची रसोई दूसरेके हाथकी खा नहीं सकते थे और बनाना आता नहीं था और जाते थे चौदह मील पैदल। सवेरे चार बजे उठकर चल पड़े और दस बजे से पहले पहुँच गये और फिर वहाँ से तीन-चार बजे चले और दस बजे तक घर लौट आये। तो दोपहरको खायें क्या? तो महाराज, उनके पास चिवड़ा होता था। थोड़ा दही में डालकर उसमें

नमक डाल देते और थोड़ा दही में डालकर उसमें शक्कर डाल देते। थोड़ा दूध में डाल देते। अब देखो चिवड़ा तो एक ही है। परन्तु दहीकी उपाधिसे, नमककी उपाधिसे, शक्करकी उपाधि से, दूधकी उपाधि से भिन्न-भिन्न प्रकारका स्वाद देता।

नारायण, इसी तरह से ब्रह्म तो है एक, आनन्द है एक। परन्तु आप अंगूरका आनन्द लेना चाहते हैं कि चटपटेका ? तो जब हम नामोच्चारण करते हैं तो चाहे जल्दी-जल्दीका आनन्द ले लो, चाहे धीरे-धीरेका आनन्द ले लो, चाहे जोर-जोर से का आनन्द ले लो, चाहे नामके ध्यानका आनन्द ले लो। ऐसा नाम है, जैसा मोम आपके हाथ में हो और उसकी चाहे औरत बना लो, चाहे मर्द बना लो ! उसका चाहे जैसा पुतला बना लो ! जैसा-भी खिलौना बना लो। नाम ऐसी नम वस्तु है, नमनशील कि आप इससे राम देख लो, कृष्ण देख लो, शिव देख लो ! नामका सब कुछ बन जाता है। इसी से हमारे महात्माओं ने कहा, 'नाम परमानन्द है'

'मधुरमधुरमेतन्मङ्गलं मङ्गलानाम्।'

'मधु' माने जिसको लेकर मनुष्य मस्त हो जाये।

'माध्यति अनेन इति मधु।' और,**'मधुराति इति मधुरं,** अथवा **'मधु एव मधुरं'**-मधु क्षरण करता है यह नाम। बृहदारण्यक उपनिषद् में बाईस-तेईस वस्तुओंका नाम लेकर वर्णन किया गया है-

'इयं पृथिवी सर्वेषां भूतानां मधु'

यह पृथिवी सम्पूर्ण प्राणियोंका मधु है। आप मधु है, तेज मधु है, वायु मधु है, आकाश मधु है। इस प्रकार यह पुरुष जो है, यह मधु है। बड़ा मीठा है। यह जब अपना मन बिगाड़ देते हैं, तभी कड़वा लगता है। नहीं तो अपना-आपा किसीको कड़वा लगता ही नहीं। यह तो मधुस्वरूप है।

ऋग्वेदमें आया है,

मधु वाता ऋतायते मधु क्षरन्ति सिन्धवः।
माध्वीर्नः सन्त्वोषधीः ॥
मधु नक्तमुतोषसो मधुमत्पार्थिवं रजः।

मधु, मधु, मधु !

नारायण, यह वेदों में वर्णन तो है, परन्तु मिलेगा कहाँ ? वह बोतलमें जो मधु होती है, वह मधु नहीं है और जो छत्ते में लगती है, वह मधु नहीं है। मधु कौन है ?

'मधुरमधुरमेतत्'

आपको ब्रह्म-मधुका पान करना हो तो नामका उच्चारण कीजिये। आज तक दुनिया में ऐसा कोई सन्त, ऐसा कोई महात्मा, ऐसा कोई सिद्ध पैदा ही नहीं हुआ है, जिसने नामका आश्रय न लिया हो। बिना नामाश्रयके आज तक कोई भी महात्मा बना ही नहीं है।

आप अपने हृदयमें परिवर्तन चाहते हैं ? दु:ख मिटाना चाहते हैं ? तो नामका उच्चारण कीजिये ! दु:ख मिट जायेगा। हम विश्वासकी बात नहीं करते हैं। आप जरा-सा आँख बंद करके कृष्ण, कृष्ण, कृष्ण उच्चारण कीजिये। जितनी देर आप कृष्ण, कृष्ण करेंगे, दु:ख नहीं रहेगा। केवल ताली पीटकर परमार्थको नहीं प्राप्त कर सकते। केवल चुटकुला सुनकर परमार्थको नहीं प्राप्त कर सकते। यह कोई खेल, कहानीकी बात नहीं है। यह कोई शायरी नहीं है। आप अपने हृदय में नामकी ज्योति जगाइये। अपने हृदय में आप नामकी बाँसुरी बजाइये। आप नामका मृदुल-मृदुल स्पर्श कीजिये। नामकी गंध फैलने दीजिये। आपके हृदय में देखिये नाम क्या रस, क्या स्वाद वितरण करता है।

मधुरमधुरमेतन्मङ्गलं मङ्गलानां ।

गोस्वामी तुलसीदासजी ने कहा कि हम किसी मतकी निन्दा तो नहीं करते हैं- **'करम उपासन ज्ञान वेद मत '**

कर्मकाण्ड भी वेदका मत है, उपासना भी वेदका मत है, ज्ञान भी वेदका मत है। उसमें कोई गलती नहीं है।

'सो सब भाँति खरो ।'

वह तो हर तरह से खरा है ! वैदिक है, बिलकुल ठीक है। पर हमारी स्थिति तो यह है कि ,

मोहि तो सावन के अन्धहि ज्यों सूझत रंग हरो ।

मैं तो अन्धा हूँ ! न तो वेदमत जानता हूँ और न खरे-खोटेको पहचानता हूँ। देखो, जो अन्धा होता है उसके हाथ में सिक्का दे दो। तो वह खरा है कि ख़ोटा, वह बेचारा पहचान नहीं सकता। तुलसीदासजी कहते हैं कि मैं तो अन्धा हूँ, कहाँ पढ़ूँ-लिखूँ वेद मतको ! मैं कैसे अपने हृदय में धारण करूँ। अन्धा तो कर्मकाण्डका अधिकारी ही नहीं है। अन्धा यज्ञ नहीं कर सकता है। जिसको अंग-भंग होता है, वह कर्मकाण्डका मुख्य-अधिकारी नहीं होता है। तो गोस्वामीजी ने कहा कि मैं तो अन्धा हूँ! और, वह भी ऐसा, जैसे कोई सावन में अन्धा हो जाये ! चारों ओर हरियाली फैली हो और वह अन्धा।

जाँचत रह्यों सावन पातरि ज्यों कबहूँ न पेट भरो ।
अबहौं सुमिरत नाम सुधारस पेखत परुसि धरो ॥

जैसे कुत्ता दरवाजे-दरवाजे पर पत्तलें चाटता फिरता है, परन्तु कभी पेट नहीं भरा। सिद्धान्तकी बातों से कभी किसीका पेट भरता है ? बिना वैराग्यके, बिना निवृत्तिके, बिना एकाग्रताके, सिद्धान्तकी बातें अपना फल नहीं देतीं। कर्म, उपासना और ज्ञान-यह सिद्धान्तकी चर्चा बहुत हो चुकी। **'कबहूँ न पेट भरो'**-हमारा पेट नहीं भरा। अब मैं भगवान्‌के नामका स्मरण करता हूँ और देखता हूँ कि मेरे सामने रस परोस कर रखा हुआ है। **'पेखत परुसि धरो'**-यह ध्वनि है कि मैं देखता हूँ कि एक पात्र में मेरे सामने अमृत परोसकर रखा हुआ है और मैं उसको देख भी रहा हूँ! अमृत न हो और कोई याद करता हो तो क्या काम चलेगा ? और, अमृत है तो क्या काम चलेगा ? अमृत है और मैं उसको जानता हूँ। देख भी रहा हूँ। 'तब पीते क्यों नहीं '? पीता इसलिये नहीं हूँ कि मेरी जीभ पर ऐसी वस्तु आ गयी है, जो अमृत से मीठी है। मैं नामस्मरण कर रहा हूँ और देखता हूँ कि अमृत हमारे सामने परोसकर रखा हुआ है। परन्तु मेरी पीनेकी रुचि नहीं होती।

मूल बात क्या हुई ?

उपनिषद्‌ने कहा कि, **'नामब्रह्मेत्युपास्व'**।

'नाम ब्रह्म है, इसकी उपासना करो'।

तब ब्रह्म क्या है ? आनन्दरूप। नाम है आनन्दरूप। और, जब नाम है आनन्दरूप और वह हमको प्राप्त हो गया तो हमारे दुःख तो है नहीं। सो दुःखनिवृत्तिके लिये हमको कुछ करना नहीं। अच्छा आओ, दुःखनिवृत्तिके लिये नहीं करना है तो सुखकी प्राप्तिके लिये करो! अरे, सुखोंका सुख जो है वह आकर हमारी जीभ पर बसा है, अब हम सुखकी प्राप्तिके लिये क्या करें ? इससे हुआ क्या ? जीभ पर आया नाम और उसमें हुआ आनन्दका अनुभव और हृदय में से कामना भाग गयी। यह नामानन्द, नामामृत जिह्वा पर आया!

एक दूसरी बात सुनाते हैं।

नामके बारे में आप देखो-नाम ब्रह्म है। ब्रह्म है, इसलिये चेतन है। चेतन कैसे है ? चेतनका एक ही लक्षण है-प्रकाशकत्व। दूसरी चीजको मालूम करना। अपनेको मालूम करनेके लिये या दूसरेको मालूम करनेके लिये जिसको दूसरे प्रमाणकी अपेक्षा नहीं होती है, उसीको चेतन कहते हैं। **'स्वेतर-सर्वप्रकाशकत्वे सति इतरप्रकाशनिरपेक्षत्वं'**-अपने से इतर किसी दूसरे प्रकाशकी जरूरत न हो और अपने से इतर सबको प्रकाशित करे। अपने सिवाय जो कुछ है, वह सब हमको ही मालूम पड़ता है। तो अपने सिवाय जो कुछ है, वह जिसको मालूम पड़ता है और जिसको दूसरे प्रकाशकी जरूरत नहीं

है, उसका नाम होता है **'चेतन'**। **'अवेद्यत्वे सति अपरोक्षत्वं'**-जो घट, टादिके समान वेद्य न हो और साक्षादपरोक्ष हो, स्वयंप्रकाश।

अब जरा देखो, यह आपका नाम कहाँ है ?

एक अद्वितीय, अखण्ड ब्रह्म में पृथक्-पृथक् वस्तुका जो प्रकाशकत्व है, वह नाम है। **अयं घटः, अयं पटः, अयं मठः'**। ऐसे समझो कि वेदान्त में ब्रह्मज्ञानके लिये महावाक्यरूप प्रमाणकी जरूरत पड़ती है और भक्ति-सिद्धान्त में भगवान्को प्रकाशित करनेके लिये **'नाम'** प्रमाण रूप है। नाम प्रकाशक है, राम प्रकाश्य है। गोस्वामीजी ने दूसरी तरह से लिखा है,

'जगत प्रकाश्य प्रकाशक रामू' ।

आप इसको ऐसे पढ़िये,

'राम प्रकाश्य प्रकाशक नामू'।

तो प्रकाशकत्व जो है, यह चेतनका लक्षण है। किसीके हृदय में यदि राम आवेंगे, तो आवेंगे क्या ? वे तो हैं। बुलाना तो है नहीं। आपके घर में अंधेरा है, कोई चीज है, पर वह दिखाई नहीं पड़ती है। तो राम तो हैं, परन्तु उनका रूप नहीं दीखता है। सो आप नामका दिया अपने हृदय में सँजो लीजिये, तो रामका रूप दिखने लगेगा।

संसार में जितने मत, पंथ हैं और वे ईश्वरका जैसा भी रूप मानते हैं, उसीको हम **'राम'** बोल रहे हैं। तो हृदय में जो राम है माने परमेश्वर है, रामका रूप है, उस रूपको हम किस दीपकके प्रकाश में देखें ? नामके प्रकाश में देखो ! यहाँ तक कि यदि आप अलग-अलग भी चाहें कि यह भगवान्के चरण हैं, यह भगवान्के हाथ हैं, यह भगवान्की छाती है,यह भगवान्का मुख है, ये भगवान्के नेत्र हैं, यह भगवान्का मुकुट है, यह भगवान्की वनमाला है, यह भगवान्का पीताम्बर है-एक-एक चीजका आप अलग-अलग नाम लीजिये। वह नाम अलग-अलग वस्त्राभूषणोंको भी प्रकाशित करेगा, अलग-अलग आयुधोंको भी प्रकाशित करेगा। आप धनुर्धारी राम बोलिये ! तो धनुर्धारी राम बोलने में धनुष-बाण सहित राम प्रकाशित होंगे। आप मुरलीधारी कृष्ण बोलिये ! तो मुरली सहित कृष्ण प्रकाशित होंगे। पीताम्बरधारी कृष्ण बोलिये। तो पीताम्बर सहित कृष्ण प्रकाशित होंगे। यह नाम एक ऐसा प्रकाश है, जो वस्त्राभूषण सहित, आयुधसहित अंगोपांग सहित अपने इष्टदेवकी मूर्तिको हमारे हृदय में प्रकाशित करता है। बनाता नहीं है। दिखाता है।

शब्दका स्वभाव निर्माणका नहीं है, बोधनका है। शब्द घड़ेको बनाता नहीं है, बल्कि अनजान व्यक्तिको बोध कराता है कि यह घड़ा है। पहले हमने

घड़ी नहीं देखी थी कि घड़ी कैसी होती है ? हमारे गाँव में घड़ीका प्रवेश नहीं था। तो हुआ यह कि गाँवके बाजार में प्लेग पड़ा। तो वहाँके एक व्यापारी वहाँ से अपनी दूकान उठाकर हमारी बैठक में चले आये। वहाँ उनकी दूकान लग गयी और दीवार पर घड़ी टँग गयी। हमको बताया गया कि यह घड़ी है। उसको कैसे चलाया जाता है, उसको कैसे देखा जाता है-उसी घड़ी पर मैंने पहले-पहल सीखा था। कौन छोटी सुई है, कौन बड़ी सुई है और उनका क्या-क्या कार्य है-सब मालूम हो गया। तो **'घड़ी'** शब्द हमको पहले से मालूम था। उस शब्द ने उस दिन घड़ी से हमारी पहचान करवा दी। तो घड़ीको बनाता नहीं है घड़ी शब्द, बल्कि घड़ीकी पहचान कराता है। इसी प्रकार यह जो हम भगवान्‌का नाम लेते हैं, यह हमारे हृदय में भगवान्‌का निर्माण नहीं करता, बल्कि भगवान्‌की पहचान कराता है। नामके भीतर जो भगवान् छिपे हुए हैं, उच्चारण करने से वह भगवान्‌को जाहिर कर देता है।

तो नारायण, यह है भगवान्‌का नाम-जो भगवद्‌रूप प्रमेयको प्रमाणित करनेके लिये प्रमाण-स्वरूप है, प्रकाश स्वरूप है। इसलिये नाम चेतन है, नाम प्रकाशक है। सच्चिदानन्द स्वरूप है नाम।

श्रीचैतन्यमहाप्रभुने कहा-

चेतोदर्पणमार्जनं भवमहादावाग्निनिर्वापणं
श्रेयः कैरवचन्द्रिकावितरणं विद्यावधूजीवनम् ।
आनन्दाम्बुधिवर्धनं प्रतिपदं पूर्णामृतास्वादनं
सर्वात्मस्नपनं परं विजयते श्रीकृष्णसंकीर्तनम् ॥

'चित्त एक दर्पणके समान है और उस पर वासनाका मैल चढ़ गया है। उस दर्पणको मलकर स्वच्छ करनेवाला है भगवन्नाम संकीर्तन। संसार महादावाग्नि है। इसमें पड़े प्राणी जन्म-मृत्यु तथा दैहिक, दैविक, भौतिक तापों से भस्म हुए जा रहे हैं। इस महादावाग्निको नामसंकीर्तन बुझा देता है। कल्याण कुमुदिनी है, भगवन्नामकी चंद्रिका उसे प्रफुल्लित कर देती है। विद्यावधू है और उसका जीवन है भगवन्नाम। ब्रह्मविद्याकी प्राप्ति-ब्रह्मज्ञान हो जाने पर यदि जीवन में भगवन्नाम है तो विद्या सधवा है, अन्यथा विधवा है। ब्रह्मविद्याका भगवन्नाम सौभाग्यचिह्न है। भगवन्नाम-संकीर्तन पद-पद पर आनन्द समुद्रको तरङ्गायमान करता है और उसमें सम्पूर्ण रूप से चित्त डूब जाता है-निमग्न हो जाता है। ऐसा श्रीकृष्णका नाम-संकीर्तन जीवन में विजयी-व्याप्त होवे !

*

नाम महिमा

अब एक बात आप लोगोंको और सुनाते हैं कि जिन लोगोंका यह ख्याल है कि नाम- जप करनेमें जब एकाग्रता हो तब नामका फल होता है, वे लोग नामकी महिमाको कम जानते हैं। जैसे यह तो वैद्यकी वह दवा हुई जो अनुपानके बिना काम ही नहीं करती हो। बहुत बढ़िया दवा दी वैद्यजी ने ! उन्होंने कहा था कि अदरकके रसमें लेना। अब अदरकका रस नहीं मिला। तो यह फायदा करेगी कि नहीं करेगी? नहीं करेगी। नारायण, वह दवा क्या है? फिर तो दवाके बदले अदरक का रस ले लो ! तो नाम एकाग्रताके बिना लाभ नहीं करता-यह बात बिलकुल गलत है। नाममें वस्तु-शक्ति है।

जैसे अनजानमें भी अमृत पीने पर आदमी अमर हो जाये और अनजानमें भी जहर पीने पर मर जाये, ऐसे अनजानमें भी भगवन्नाम लेने पर, बिना एकाग्रताके चंचलतासे भी भगवन्नाम लेने पर वह अपना काम करता है।